





1207



१  
४३३

१३३







३३२

३३२

# महावाक्यरत्नावली ।

काशीस्थ टीकाकार संस्कृत महाविद्यालयप्रधाना-  
 ध्यायेण श्रीसवित्रदत्त ए० देवकीचन्द्रन  
 शर्माद्वारा वाराणसीप्रमाणेन विनाम-  
 स्थलविपश्यालङ्कृता ।

साहित्याचार्य  
 गौरीनाथपाठकेन संशोधिता ।

काशीस्थ श्रीमद्वाराणसीमहाविद्यालय-  
 निजद्वयव्ययेनैव वाराणसी  
 तारा प्रिण्टिङ्गमुद्रणालये श्री पं० रामेश्वर पाठक  
 द्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

प्रथमावृत्ति १९०० ] १९०३

विनामुद्रण



## विषय-सूची ।

|  | पृष्ठ | पंक्ति |
|--|-------|--------|
| महावाक्यरत्नावली पदयोजना                   | १     | १      |
| अष्टोत्तरशतोपनिषद्                         | ३     | १५     |
| पञ्चरान्तीः                                | ३     | १५     |
| सार्थान्तिकविधिवाक्यानि                    | ११    | १३     |
| बन्धमोक्षवाक्यानि                          | २३    | ३      |
| अविद्यानिन्दावाक्यानि                      | २७    | २३     |
| जगन्मिथ्यावाक्यानि                         | ३१    | ४      |
| उपदेशवाक्यानि                              | २५    | २      |
| जीवब्रह्मैक्यवाक्यानि                      | ४३    | ७      |
| मननवाक्यानि                                | ४७    | २०     |
| जीवमुक्तिवाक्यानि                          | ५२    | १०     |
| स्वानुभूतिवाक्यानि                         | ७२    | २४     |
| समाधिवाक्यानि                              | ८६    | १४     |
| अष्टस्वरूपवाक्येषु नानालिङ्गस्वरूपवाक्यानि | ६३    | ६      |
| पुलिङ्गस्वरूपवाक्यानि                      | ६६    | १८     |
| लीलिङ्गस्वरूपवाक्यानि                      | १०३   | २०     |
| नपुंसकलिङ्गस्वरूपवाक्यानि                  | १०५   | २२     |
| आत्मस्वरूपवाक्यानि                         | ११३   | ५      |
| सर्वस्वरूपवाक्यानि                         | ११७   | ३      |
| ब्रह्मस्वरूपवाक्यानि                       | १२०   | ६      |
| अवशिष्टवाक्यानि                            | १२६   | २५     |
| फलवाक्यानि                                 | १३१   | ४      |
| विदेहमुक्तिवाक्यानि                        | १३६   | २      |



## निज्ञप्तिः ।

-1

इह खलु धर्मार्थकाममोक्षाख्येषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु परमानन्दा-  
धातिलक्षणा मोक्ष एव परमपुरुषार्थः नच पुनरावर्तत इति श्रुतेः  
सच ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानादेवेति-“द्वितीयाद्वै भयं भवति” “यन्नहि  
द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति” “मृत्योः समृत्युमाप्नोति  
य इह नानेव पश्यति” “तत्र कोमोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः”  
इत्यादि श्रुतिश्रवः प्रमीयते । तस्य च ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानस्योपसंहारा-  
दिषड्विधासिद्धतात्पर्यनिर्णयद्वारा सम्पादकत्वेन सर्वस्य भूतं  
श्रीमच्छङ्करभगवत्पादैर्भाषितं शारीरकभाष्यमिति सुप्रथितमेव ।

तदर्थवैशद्यायैव प्रवृत्ताः भूयांसो भामत्यादयो वेदान्तग्रन्थाः  
वरीवृत्तति परं तेषामतिगभीरार्थतया दुरवगाहत्वे यथाऽऽप-  
धियामपि मुमुक्षूणा तत्र प्रवेशोऽनायासेनैव स्यादित्यनुजिघृक्ष्या  
परमकारुणिकैः श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवासुदेवोद्दे-  
शिष्यतां गतैः । श्रीमद्भामचन्द्रेन्द्रसरस्वतीयतिभिः महावाक्य-  
रत्नावली नामधेयो ग्रन्थो व्यरचि । अत्रचाष्टोत्तरशतोपनिषदां  
वेदान्तसिद्धान्तप्रतिपादकानि बहूनि वाक्यानि संगृहीतानीति विशेषः  
अस्येयं किरणावल्याख्यव्याख्या मूलकृत्सतीर्थ्यभूतैः ब्रह्मयोगि-  
भिर्भूमिः प्रणिन्य इति तद्व्याख्याननावसानोक्तपेद्यन सुव्यक्तम्

इति श्री वासुदेवोद्देशिष्येण ब्रह्मयोगिना ।

महावाक्यरत्नजाता किरणावलिरीरिता ।

यद्यपि ग्रन्थकृतः समयो दृढतरप्रमाणानुपलब्ध्या यथावन्नि-  
श्चिन्तुमशक्यः तथापि अयमप्ययदीक्षितादर्वाचीन इति निश्चितमेव ।  
यतः अप्ययदीक्षितकृतं सिद्धान्तलेशसङ्ग्रहमाश्रित्य ग्रन्थकृतः  
शिष्यः श्रीमद्गङ्गाधरोद्देशिष्यसरस्वती यतिः वेदान्तसिद्धान्तसूक्ति-  
मञ्जरीप्रणिनाय । ग्रन्थकृतप्रशिष्य आनन्दबोधेन्द्रसरस्वती-  
महोदयश्च योगवासिष्ठः तात्पर्यप्रकाशव्याख्यां निर्ममे ।



अतः एतादृशशिष्यप्रशिष्यसम्पूजितपादस्थ ग्रन्थकतुरतिप्रसिद्ध-  
त्वं परमाचार्यस्त्वञ्च ध्रुवमधगम्यते ।

अस्याश्च महावाक्यरत्नावल्या आदर्शपुस्तकेषु मुद्रितेष्वपि  
वहुत्र पाठाशुद्धिदर्शनात् विशुद्धपुस्तकप्रकटनकामेन वाराणसी  
वास्तव्य वेदान्तनिष्ठेन वैश्यावतंसेन श्रेष्ठिना श्रीमता भगवानदास  
पोद्दारमहोदयेनानुरुद्धाः काशीस्थटीकभाषी संस्कृतमहाविद्यालया-  
ध्यक्षो अस्मद्गुरवः श्रीमन्तो देवकीनन्दनशस्त्रिदर्शनालङ्कारमहोदया  
असुस्था अपि कृपया यथा कथञ्चित् परिश्रममुररीकृत्य मूलत-  
द्वय ख्यानसंसाधनपुर सरं कञ्चित् कञ्चित् विषमस्थलेषु टिप्पणी-  
मरचयन् ।

सन्त्यक् शोधितेऽप्यस्मिन् मदीयदृष्टिदोषात् सीसकाल्परयोजन  
दोषाद्वा जाताऽशुद्धिः शुद्धिपत्रसन्दर्शनेन संशोध्यमामनुगृह्णन्तु ।

इदन्त्ववश्यमेव वक्तव्यं यदेतद्ग्रन्थमुद्रणं कृतधनव्ययः  
मूल्यमन्तरेण विद्वद्भ्यः समर्पणकामः श्रीमान् वेदान्तनिष्ठो  
भगवानदासपोद्दारमहोदय एव सर्वथा भाधु वादार्ह इति ।

विदुषामाश्रवस्य

गौरीनाथ शर्मणः ।



# अशुद्धि-संशोधनम् ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्धि         | शुद्धि          |
|-------|--------|-----------------|-----------------|
| २     | १८     | विकलैषत्        | विकलैषत्        |
| २     | २१     | लीलति           | लीलति           |
| २     | २५     | मिच्छुनां       | मिच्छुनां       |
| ४     | ४      | दुर्लभाम्       | दुर्लभाम्       |
| ४     | २२     | आक्षमायिका      | आक्षमायिका      |
| ५     | ५      | साट्यायनी       | साट्यायनी       |
| ७     | २५     | मयम्            | मयम्            |
| १५    | १७     | द्विजानीयात्    | द्विजानीयात्    |
| १६    | २      | बुद्धा          | बुद्धा          |
| १६    | ७      | आलपते           | आलपेत्          |
| १९    | १०     | व्यवहारप्रसक्तौ | व्यवहारप्रसक्तौ |
| २४    | १६     | मनुष्यादीनां    | मनुष्यादीनां    |
| ३६    | ५      | तवपद्           | तवपद्           |
| ४०    | ११     | भूतेः           | भूतेः           |
| ४१    | १      | भवेत्           | भव              |
| ४१    | १८     | तृष्णी          | तृष्णीम्        |
| ४७    | १८     | वाक्यान्त्य     | वाक्यान्त्य     |
| ५१    | २      | बन्धमोक्षौ      | बन्धमोक्षौ      |
| ५१    | २१     | विलक्षत्वात्    | विलक्षणात्वात्  |
| ५३    | १८     | शून्या          | शून्या          |
| ६८    | २०     | जीवन्मुक्तौ     | जीवन्मुक्तौ     |
| ६१    | १३     | निश्वास         | निश्वास         |
| ६५    | २४     | भवन्तीत्यर्थः   | भवन्तीत्यर्थः   |
| ६५    | २५     | अमर्षः          | अमर्षः          |
| ६७    | १५     | अचिद्           | अचिद्           |



|     |    |                  |                             |
|-----|----|------------------|-----------------------------|
| ६७  | २४ | निर्विकल्पो      | निर्विकल्पा                 |
| ७२  | १५ | बोऽह             | बोऽहम्                      |
| ७६  | २  | निष्प्रलोह       | निष्प्रलोहम्                |
| ८१  | १६ | देहादावहंभाष     | देहादावहंभाष                |
| ८४  | २५ | उपबृहत्पात्र     | उपबृहत्पात्र                |
| ८५  | १६ | अवयवैकरसा        | अवयवैकरसो                   |
| ८६  | ५  | सर्वचिद्भर्जितं  | सर्वचिद्भर्जितं             |
| ८८  | ११ | मैत्रेय          | मैत्रेयि                    |
| ८९  | १४ | स्वातिरिक्तातां  | स्वातिरिक्तातां०            |
| १०१ | १६ | संभयो            | संभयो                       |
| १०५ | २२ | स्वरूपवाक्यानि   | स्वरूपवाक्यानि              |
| १०६ | १० | न्युच्यते        | न्युच्यन्ते                 |
| १०८ | २१ | अभाक्            | अभाक्                       |
| १०९ | २४ | अनिकु            | अनिकुम्                     |
| १०७ | ५  | एवकारा           | एवकारो                      |
| १०७ | १२ | अतः०             | अतः०                        |
| ११३ | १७ | कामादिबृत्त्यवभा | कामादिबृत्त्यवभा०           |
| ११७ | ४  | सपवाधस्तात्      | सपवाधस्तात्सवपरिधात्        |
| ११७ | १५ | स्वरूपवाक्यानि   | स्वरूपवाक्यानि              |
| ११८ | ४  | सर्वम्           | सर्वम्                      |
| ११८ | १७ | प्रत्याधिक०      | प्रत्याधिक०                 |
| १२७ | ३  | भासमानमाभास्वरम् | भासमानमाभास्वरम्            |
| १२० | १३ | प्रज्ञाभयं       | प्रज्ञाभयम्                 |
| १२५ | १० | अद्य             | अद्य                        |
| १२६ | ११ | अत               | अत                          |
| १३४ | १५ | तत्त्वजन्मोच्च०  | तत्त्वजन्मोच्च०             |
| १३६ | १७ | काशयवत्          | काशयवत्                     |
| १४१ | १३ | विश्रुक्तिः      | विश्रुक्तिः बोधोनि-         |
| १४४ | २  | पदेह             | मिवास्माति श्रुतीत<br>चिदेह |



# महावाक्यरत्नावली ।

## टीकाटिप्पणीसहिता ।

ॐ श्रीमद्विश्वाधिष्ठान परमहंस सद्गुरु श्रीराम-  
चन्द्राय नमः । योविध्यादिविदेहान्त महावाक्यार्थ  
विग्रहः श्रीरामचन्द्र रूपाय तस्मै भूमात्मने नमः ॥१॥

( टीका ) महावाक्यरत्नावलीपदयोजना । प्रार्थना । अन-  
न्तशक्तिसन्दोहपूर्णस्य परमात्मनः । विघ्नविध्वंसिनीशक्तिं गण-  
राजमुपास्महे । ईशाद्युपनिषत्प्रोच्यन्महावाक्यकलेवरम् । विक-  
लेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥ विश्वाधिष्ठानसन्मात्रवासुदेवे-  
न्द्रमूर्तये । श्रीदेशिकस्वरूपाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ नत्वा श्री  
देशिकं ब्रह्म मात्रानन्दाप्तिमिच्छताम् । महावाक्यरत्नजातकिर-  
णावलिरीर्यते ॥ इह खलु परमदयाकलेवरेऽयं भगवतिलीलाविभू-  
तिस्वांशजप्राणिपटलनिष्प्रतियोगिकनिर्विशेषब्रह्ममात्राप्तये ऋगादि-  
चतुर्वेदप्रविभक्तेशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषत्प्रसिद्धाष्टोत्तरसहस्रमहावाक्य-  
रत्नान्युद्धृत्य विध्यादिविदेहान्तभेदेन त्रयोदशधा विभज्य तत्र  
स्वरूपमहावाक्यजातं नानालिङ्गाद्यवशिष्टान्तभेदेनाष्टधा विधाय  
च मुख्याधिकारिणमुद्दिश्य तदर्थबुभुत्सूनां परस्परसापेक्षतो महा-  
वाक्यरत्नजातप्रकाशकैकोत्तरसप्तशतप्रकरणगर्भितप्रभावलि तद्भास-  
कलोचनञ्च ग्रन्थं प्रकटयामास । तस्यातिविस्तरत्वेन परिहृताधि-  
कारात् तदवलोकनासमर्थानुकम्पयानुबन्धचतुष्टयवद्विशतिप्रकर-  
णगर्भितविध्यादिविदेहान्तमहावाक्यपदयोजनां प्रतिजानान उपो-



दूषातप्रकरणस्य श्रीरामचन्द्रं छन्दोमयाङ्गतया नमस्करोति य इति सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्युपक्रम्य विदेहमुक्त एव स इत्यन्तविध्यादिविदेहमुक्त्यन्तमहावाक्यानामर्थो निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रावस्थानलक्षणविकलेवरकैवल्यं तदेव विग्रहो यस्य स तथोक्तः तं श्रीवासुदेवेन्द्राभिधं प्रणौमि श्रीगुरुचरणानुसन्धानं करोमीत्यर्थः ।

यः पूज्योयतिभिः स्वधर्मनिरतैर्ध्यायन्ति यं योगिनोयेनात्तं निगमान्तवेद्यमनिशं यस्मै हविर्दीयते । यस्मात्स्थावरजंगमं समभवद्यस्यांशमात्रोचरो यस्मिन् लीनामिदं प्रणौमि सत्ततं तं वासुदेवं गुरुम् ॥ २ ॥

( टीका ) यच्छब्दसंज्ञविभक्तिभिरस्मदेशिकस्य ब्रह्मविद्वरिष्ठत्वेन सर्वज्ञेश्वरत्वं प्रत्यगभिन्नब्रह्मत्वं निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रत्वं च स्वतः सिद्धमित्याह य इति । स्वातिरिक्तानात्मानिरसनपूर्वकं स्वात्ममात्रप्रापकोधर्मः स्वधर्मस्तत्रैव निरतास्तन्निष्ठास्तैर्यतिभिः पूज्यः स्वाश्रमाचारसम्पन्नत्वात् । योगिनो यमीशत्वेन ध्यायन्ति येनैव समस्तनिगमान्तवेद्यं ब्रह्मस्वमात्रमित्यात्तं सम्यग्ज्ञानिनोनि-

प्रणम्य विभुमात्मानं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।

व्याख्यातार्थाशबोधाय क्रियते टिप्पणी स्फुटा ॥ १ ॥

( टिप्पणी ) विकलैवरकैवल्यमिति विगतं कलेवरं शरीरं यस्मिन् तत्तथाभूतं कैवल्यं यस्मात् तदित्यर्थः । श्रीदेशिकमिति उपदेष्टारमित्यर्थः । परमदयाकलेवरेयमिति अयं ग्रन्थकारः । वक्ष्यमाणं प्रकटयामासेतिक्रियाकर्तुः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वात् । परमदयाकलेवरे इति परमदयैव कलेवरं यस्य तस्मिन् । लीलति लीलाविभूतिस्वांशजप्राणिपटलकर्तृकानिष्प्रतियोगिकनिर्विशेषब्रह्मस्वरूपकर्मकावासये इतिबोधः । तत्रेति विध्यादिविदेहान्तमेदेन त्रयोदशसु भेदेषु । तदर्थबुभुत्सुनामिति अष्टविध स्वरूप महावाक्यार्थबोद्धुमिच्छनाम् । छन्दोमयाङ्गतयेति छन्दोरूपशरीरतया ।



राष्ट्रेश्वरत्वात् । स्वेष्टसिद्धये यस्मै वैश्वानररूपाय हविर्दीयते ।  
यस्मादीशभावमापन्नात् स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् समभवत् । यस्यां-  
शमात्रोऽवरो जीवपूगो भवति समैवांशो जीवलोके जीवभूतः  
सनात्न इति स्मृतेः । यस्मिन् प्रत्यगभिन्ने ब्रह्मणि परिदृश्यमान-  
मिदमविद्यापदं लीनं प्रलयमुपैति तं प्रत्यगभिन्नब्रह्मरूपं प्रत्यक्पर-  
विभागासह ब्रह्ममात्ररूपं वास्वच्छ्रीगुरुं श्रीवासुदेवेन्द्राभिधं प्रणौमि  
श्रीगुरुचरणानुसन्धानं करोमीत्यर्थः ॥ २ ॥

नत्वाश्रीवासुदेवेन्द्रपादपङ्केरुहद्वयम् । ग्रथ्यते वै  
महावाक्यरत्नावलिरियं क्षया ॥३॥ अथ खलु ऋग्वे-  
दादि विभागेन वेदाश्चत्वारः, तत्रैकविंशतिशाखा ऋचः,  
नवाधिकशतं शाखायजुषः, सहस्रशाखाः साम्नः, पञ्चा-  
शच्छाखा अथर्वणस्य, । एकैकस्याः शाखाया एकैकोप-  
निषत् आहृत्याशीतिसहितशताधिकसहस्रसंख्याका उ-  
पनिषदः तासु श्रीरामचन्द्रेण रामदूताय सारतरोपनि-  
षद् अष्टोत्तरशतसंख्याका उपदिष्टाः तथाच मुक्तिकोप-  
निषत्स्याष्टोत्तरशतोपनिषन्नामबोधकाः श्लोका लि-  
ख्यन्ते ॥

( टीका ) उक्तविशेषणविशिष्टं देशिकं नत्वा महावाक्यरत्ना-  
वलीं प्रतिजानीते नत्वेति ॥३॥ ग्रथ्यमानमहावाक्यरत्नावल्याश्चतु-  
र्वेदप्रविभक्तेशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषत्सारसंग्रहतां प्रकटयितुं वृत्तमनु  
कीर्त्तयति अथेति । तथाच मुक्तिकोपनिषद्याम्नायते । ऋग्वेदादिविभा-  
गेन वेदाश्चत्वार ईरिताः । तेषांशाखाह्यनेकाः स्युस्तासूपनिषदस्तथा॥  
ऋग्वेदस्य तु शाखाः स्युरेकविंशति संख्यया । नवाधिकशतं शाखाय-

( टि० ) यच्छब्दसप्तविभक्तिभिरिति यच्छब्दोत्तरसप्तविभक्तिभिः निरा-  
वृत्तेश्वरत्वात् । आवरणशून्येश्वरस्वरूपत्वात् ॥ १ ॥



जुषोमास्तात्मज ! ॥ सहस्रसंख्यया जाताः शाखाः साज्ञः परन्तप ।  
 अथर्वणस्य शाखाः स्युः पञ्चाशद्भेदतोहरे ॥ एकैकस्यास्तु शाखाया  
 एकैकोपनिषन्मता । तासामेकामृचं येन पठ्यते भक्तितोमयि ॥ समत्सा-  
 युज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिर्दुलभाम् । माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां  
 विमुक्तये ॥ तथाप्यसिद्धं चेज्ज्ञानं दर्शोपनिषदं पठ । ज्ञानं लब्ध्वा  
 चिरादेव मामकं धाम यास्यसि ॥ तथापि दृढता नोचेद्विज्ञानस्याञ्ज-  
 नीमुत द्वात्रिंशाख्योपनिषदं समभ्यस्य निवर्तय । विदेहमुक्तावि-  
 च्छाचेदष्टोत्तरशतं पठ इति ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदां शाखाभेदं  
 दर्शयति तत्रेत्यादिना ॥

ईशाकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः । ऐतरेयश्च  
 छान्दोग्यं बृहदारण्यकन्तथा ॥ १ ॥

ब्रह्मकैवल्यजाबालौ श्वेताश्वो हंस आरुणिः । गर्भो  
 नारायणो हंसोबिन्दुनादशिरः शिखा ॥ २ ॥

मैत्रायणीकौषितकी बृहज्जाबालतापिनी । काला-  
 ग्निरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरि मन्त्रिका ॥ ३ ॥

सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् । तेजोनाद-  
 ध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥ ४ ॥

परिव्राड्त्रिशिखीसीताचूडानिर्वाणमण्डलम् ।  
 दक्षिणाशरभं स्कन्दं महानारायणाद्वयम् ॥ ५ ॥

रहस्यं रामतपनं वासुदेवश्चमुद्गलम् । शाण्डिल्यं  
 पैङ्गलं भित्तुं महच्छारीरकं शिखा ॥ ६ ॥

तुर्पातीतश्च संन्यासं परिव्राजक्षमाजिका । अन्य-  
 तैकाक्षरं पूर्णासूयार्क्ष्यध्यात्मकुण्डिका ॥ ७ ॥

( टि० ) ऋचं येन पठ्यते इति आर्षोऽयं प्रयोगः ॥



सावित्र्यात्मापाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम् । त्रिपुरा-  
तपनं देवी त्रिपुराकठभावना ॥ ८ ॥

हृदयं कुण्डलीभस्म रुद्राक्षगणदर्शनम् तारसारम  
हावाक्यपञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ॥ ९ ॥

गोपालतपनं कृष्णं शालवल्क्यं वराहकम् । शाव्या-  
यनीहयग्रीवं दत्तात्रेयञ्च गारुडम् ॥ १० ॥

कलिजाबालि सौभाग्यरहस्यं ऋचमुक्तिकेति ॥  
ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदां शास्त्राभेदं दर्शयति तत्र दशोप-  
निषद ऋग्वेदगताः, शुक्लकृष्णभेदेन यजुष एकपञ्चाशत्,  
तत्र शुक्लयजुष एकोनविंशतिः, कृष्णयजुषो द्वात्रिंशत्,  
साम्नः षोडश, अथर्वणस्यैकत्रिंशत्, आहृत्याष्टोत्तरशतम् ।  
ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदां पूर्वाचार्यप्रकाशितत्वं दर्श-  
यति तत्र गौडपादाचार्यैर्माण्डूक्योपनिषद्वाख्याता  
श्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्यैर्दशोपनिषदः । पञ्चरुद्रनृसिं-  
हतापिनी च शङ्करानन्दैः ॥ सदाशिवब्रह्मेन्द्रैः स्वयं प्रका-  
शानन्दाद्यैश्च द्वात्रिंशोपनिषदः ॥ विद्यारण्याचार्यैरष्टोत्त-  
रशतोपनिषदोव्याख्याताः ॥ महावाक्यरत्नावल्याख्या-  
यिकायाः त्रयोदशधा विभागं दर्शयति । प्रकृते तु रामच-  
न्द्रेणोपदिष्टे रामदूताय धीमते ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिष-  
द्यादसां पतौ ॥ निमज्यात्र महावाक्यरत्नावलिरुदाहृता ।  
विभाव्यते विभागेन सा त्रयोदशधा पुनः । तत्रादौ वि-  
धिवाक्यानि बन्धमोक्षपराणि च, अविद्वद्धेयवाक्यानि  
जगन्मिथ्यापराणि च, तथोपदेशवाक्यानि जीवेशैक्य-  
पराणि च । ब्रह्मविन्मननाख्यानि जीवन्मुक्तिपराणि च ।  
ब्रह्मानुभूतिरूपाणि तत्समाधिपराणि च । अष्टस्वरूपवा-



कथानि फलवाक्यान्यनन्तरम् । विदेहमुक्तिवाक्यानि  
लिख्यन्तेऽन्विष्य तत्कृमात् ॥

( टीका ) महावाक्यरत्नावल्यास्त्रयोदशधा विभागं दर्शयति  
रामचन्द्रेणेति अविद्वान् हेयोयैर्वाक्यैस्तानि अविद्वद्धेयवाक्यानि ।

यः स्वाश्रमाचाररतः परिव्राड् विजितेन्द्रियः  
सोऽधिकारीमहावाक्यरत्नावल्यां न चापरः ॥

( टीका ) महावाक्यरत्नावल्यायथोक्ताधिकारिणं दर्शयति  
य इति तुरीयातीतावधूतयोर्महावाक्योपदेशाधिकारः परमहंसस्यापी  
तिश्रुतेः ॥

वाग्पूर्णसहनाप्यायं भर्द्रं कर्णोभिरेव च । पञ्च  
शान्तीः पठित्वादौ पठेद्वाक्यान्यनन्तरम् ॥

( टीका ) महावाक्यरत्नावल्या ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषा  
सिद्धान्तसंग्रहवाक्यत्वात् तत्रत्यपञ्चशान्तिरेवात्रवक्तव्येत्या  
वागिति ॥

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठि-  
तमाविरावीर्मणधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे प्राप-  
द्वासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाभ्यृतं वदिष्यामि  
सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु  
वक्तारम् ॥ ओं शान्तिः ३ ॥ १ ॥

( टीका ) पञ्चशान्तिं तदर्थञ्च प्रकटयति वागित्यादिना ।

(टि.) तुरीयातीतावधूतयोरिति, तुरीयातीतश्चावधूतश्च तुरीयातीतावधूत-  
तयोः, जीवदशायां प्रथमं जाग्रतु द्वितीयं स्वप्नं, तृतीयं सुषुप्तं चतुर्थं तुरीयं  
चतुर्भिर्विरहितं तुरीयातीतमिति यतिधर्मनिर्णयोक्तेरवस्थाविशेषसम्पन्नोयोगी  
तुरीयातीतः । अवधूतश्च श्रुत्यागारे समरसपूतस्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ।  
चरति हि नग्नस्त्यक्त्वा गर्वं विन्दति केवलमात्मनि सर्वमित्याद्यवधूतगीतो-  
क्तलक्षणाः ।



समाहितदशायां मे मम वागिन्द्रियप्रवृत्तिर्मनसि प्रतिष्ठिता यच्छेद्धा-  
 इमनसीप्राज्ञ इति श्रुतेः । व्यावहारिकदशायान्तु मे मम मनोऽन्तः-  
 करणं वाचि वागादिकरणसमूहे प्रतिष्ठितं वागादिव्यापृतेरन्तःक-  
 रणाधीनत्वात् ॥ अन्यत्र मना अभूवं नादर्शमित्यादिश्रुतेः । मे मम-  
 वाचि मनसि च हेवृहत्यात्मकप्राण ! त्वं एधि प्रकाशरूपेण सदा  
 सन्निधिकुरु । आविःशब्देन स्वप्रकाशं ब्रह्मोच्यते प्रज्ञानशब्देन  
 व्यवहृतत्वात् तस्याविर्भूतरूपत्वमतो हे आविः हे आविर्भूत मे मम  
 मनसि अखण्डाकारवृत्तिरूपे आविः स्वातिरिक्तानात्मतिमिरग्रा-  
 सादात्ममात्रज्योतिःस्वरूपेणैधि स्वातिरिक्तानात्मविस्मरणपूर्वकं  
 सन्निधिं कुरु ।

हेवाञ्जनसे ! मे सदर्थं वेदस्य यथोक्ततत्त्वविद्याप्रतिपादकस्य  
 ग्रन्थस्य आणीस्थः आनयनसमर्थं भवतम् । मे मया देशिक-  
 मुखतः श्रुतमधीतं कदापि मा प्रहासीः उपदेष्टृमुखादवगतार्थं  
 जातस्य विस्मरणं माकार्षीरित्यर्थः ॥ अनेन मयाधीतेन परापर-  
 विद्याजातेन अहोरात्रान् अहोरात्रं सदा त्वां संदधामि अपररूपेण  
 पररूपेण वा त्वमहमस्मीति अनुसंधानं करोमीत्यर्थः । हे प्राज्ञात्मन्  
 यथा शास्त्रकर्तव्यमृतं व्यावहारिकसत्यं वावदिष्यामि । वागादि-  
 करणग्रामतो यथावद्ग्राह्यं सत्यं तद्गतहेयांशापाये पारमार्थिकसत्य-  
 स्वरूपं वा त्वां वदिष्यामि । तत्परमपरं वा ब्रह्म परापरविद्यासं-  
 योजनेन विद्यार्थिनं मामवतु । तदेव पुनः परमपरं वा ब्रह्म  
 मद्धिद्यावक्तारमाचार्यमवतु अवतुमामवतु वक्तारमिति पुनर्वचनमा-  
 दरार्थं परापरविद्याप्राप्त्यन्तरापीभूताध्यात्मिकादितापत्रयनिरस-  
 नाय शान्तिरिति वचनत्रयम् । इत्थं शान्तिर्विद्याप्रारम्भावसानयोः  
 कार्याकृतायामस्यां विद्याप्रसीदतीति सिद्धम् विद्याप्रादुर्भावसमका-  
 लमयं विद्वान् कृतार्थोभवतीत्यर्थः ॥ १ ॥



ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाद्य पूर्णमेवावशिष्यते ॥ २ ॥

( टीका ) पूर्णमद इति, यदेशतः कालतोवस्तुतः परिच्छेद-  
विरलं तत्पूर्णं यत् अद इति परोक्षाभिधायि सर्वनाम तदपि पूर्णं  
निरुपाधिकत्वात् । यदिदं शब्दवाच्यं व्यवहारापन्नं तदपि पूर्णं  
शब्दालम्बनाव्याप्तत्वात् यददःशब्दवाच्यं कारणाभावमापन्नं पूर्णं ब्रह्म  
तदेव हीदंशब्दवाच्यं कार्योपाध्यवच्छिन्नमिव भाति । वस्तुतः  
कार्यकारणकलनाविरलमित्यर्थः । यदेवेह तदमुत्रेति श्रुतेः । एत-  
दशब्दगोचरद्वैतप्रपञ्चारोपाधिकरणत्वेन पूर्णात् तत्प्रपञ्चापवाद-  
धिकरणतया पूर्णं ब्रह्मोदच्यते उद्विच्यते अतिरिच्यत इत्यर्थः । एत-  
त्कार्यकारणात्मना पूर्णस्य वस्तुनः व्यष्टि समष्टि स्वाविद्योपाधिसा-  
पेक्ष्यकार्यकारणकलनाविरलमहं ब्रह्मास्मीति तथाविधं पूर्णमादाद्य  
विदित्वा तद्वेदनसमकालं स्वातिरिक्तकार्य कारणकलनास्तित्वास्ती-  
तिविभ्रमापन्नहव इति सिद्धं निष्प्रतियोगिकं पूर्णमेव ब्रह्म  
स्वमात्रमवशिष्यते ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति उक्ता-  
र्थम् ॥ २ ॥

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै ।  
नेजस्विनाधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

( टीका ) सहनाविति औपनिषदं ब्रह्म नौ शिष्याचार्यौ  
सहैवावतु सह नौ विद्याफलं भुनक्तु पालयतु सह विद्यानिमित्तं

( टिप्पणी ) शब्दालम्बनेति नानास्वरूपेणेत्यर्थः । कार्यकारणकलनेति  
कार्यकारणसम्बन्धविरलमित्यर्थः । तत्प्रपञ्चेति इदंशब्दगोचरद्वैतप्रपञ्चेत्यर्थः ।  
स्वातिरिक्तेति पूर्णब्रह्मस्वरूपज्ञानकाले कार्यकारणसम्बन्धोऽस्तित्वास्तिवेति  
भ्रान्तेरपगमोभवतीति सर्वथा निर्विशेषस्य पूर्णस्यैव स्वस्वरूपस्य ब्रह्मणोऽवश्यं  
इति तात्पर्यम् ॥ २ ॥



वीर्यं सामर्थ्यं करवावहै सम्पादयावहै । नौ आवयोरधीतं ग्रन्थजातं  
तेजस्वि ब्रह्म याथात्म्यज्ञानयोग्यमस्तु । तत्राध्ययने यदि प्रमादा-  
त्कश्चिद्विद्वेषो भवेत्तदा स माभूदिति तत्क्षमापनायेयमाशीः प्रार्थना ।  
माविद्विषावहै मैव परस्परं विद्वेषं जनयावहै शान्तिरित्युक्ता-  
र्थम् ॥ ३ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्र-  
अथोबलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं  
माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मामाब्रह्मनिराकरोदनिराकरणम-  
स्त्वनिराकरणं मे अस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु  
धर्मास्तेष्वपि सन्तु ओं शान्तिः ३ ॥ ४ ॥

( टीका ) व्यष्टि समष्टिप्रपञ्चारोपापवादाधारविराड् हिरण्य-  
गर्भेश्वरतुर्याः मुमुक्षोः ममाङ्गानि करचरणादीनि स्वध्यानानु-  
कूलतया आप्यायन्तु चिन्मुद्रासिद्धासनादिव्यापृतानि कुर्वन्तु ।  
तत्प्रसादादितोमदीयवाक् प्राणश्चक्षुःश्रोत्रमित्युपलक्षितकर्मज्ञाने-  
न्द्रियाणि प्राणपञ्चकमपि पराक्प्रवृत्तिं विहाय प्रत्यक्प्रवणतया  
अथो यथाबलं सर्ववेदान्तश्रवणमनननिदिध्यासनपर्यवसन्नानि  
भवन्तु । यदीशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषत् प्रतिपाद्यं तदौपनिषदं ब्रह्मैव  
सर्वम् । सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति श्रुतेः । ब्रह्मातिरिक्तास्तित्वधिया अहं  
ब्रह्म मा निराकुर्याम् ब्रह्मैवास्मीत्यनुसन्धानं कुर्यामित्यर्थः । ब्रह्मापि  
प्रत्यग्भावमापन्नं मा मा निराकरोत् आवयोरहं ब्रह्मास्मि ब्रह्मैवाह-  
मस्मीत्यनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । अतदनात्मापनहवसिद्धे  
तदात्मनि निरते तद्भावमापन्ने मयि ये उपनिषत्सु प्रकाशिता

( टि० ) विराडिति, चतुर्विधस्थूलशरीर समष्ट्युपहितचैतन्यं वैश्वानरो-  
विराडिति च वेदान्तसारे । हिरण्यगर्भः सूत्रात्मा ईश्वरोमायोपहितचैतन्यम् ।  
तुर्पस्त्वनुपहितचैतन्यम् । चिन्मुद्रेति, चिन्मुद्रा योगशास्त्रोक्ता सिद्धासनं



धर्माः शमादयस्त्यक्तकामादायः सच्चिदानन्दादयश्च विद्यन्ते त  
एव मयि सन्तु । आद्यतिरादरार्था ॥ शान्तिरित्युक्तार्थम् ॥ ४ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्ष-  
भिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैः स्तुषुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि  
देवहितं यदायुः ॥ ५ ॥

( टीका ) भद्रमिति हेविराडादयोदेवाः । मुमुक्षवो वयं भव-  
त्प्रसादतः मुमुक्षुणां बहुत्वात् बहुवचनम् कर्णेभिरिति छान्दसम्-  
कर्णैः भद्रं निर्विशेषतुर्यब्रह्मप्रतिपादकवेदान्तजातं शृणुयाम  
संशयादिपञ्चदोषशान्त्यवधिवेदान्तश्रवणं कुर्म इत्यर्थः । केवलं  
श्रवणात् किं स्यादित्यत आह भद्रमिति यथाशास्त्रं ब्रह्मविद्या-  
श्रवणतोयजत्रा ध्यानयज्ञयजनशीला वैयं अक्षभिः प्रत्यग्भावापन्न-  
करणैः भद्रं वैराज्यादिसाकल्यं नैष्कल्यं तुरीयं तुरीयातीतं वा  
पश्येम पश्यामः । अल्पायुषां कथं तत्सिद्धिरित्याह स्थिरैरिति  
तत्तदङ्गाभिमानिन्द्राधिदेवताप्रसादतः स्वस्वविषयव्यापृतिशून्यैः  
तनूभिः सूक्ष्मवस्तुगोचरैः अङ्गैर्विशिष्टा वयं तुष्टुवांसः युष्मदीयां-  
स्तुतिं कृतवन्तः देवहितं देवेन प्रजापतिना हितं समर्पितं यन्नैरुज्या-  
दिगुणविशिष्टमायुश्चिरजीवित्वं तदव्यशेम विशेषेण प्राप्नवाम  
तस्मादपमृत्योरभावात् चिरं भद्रं शृणुयाम इति पूर्वत्रान्वयः ॥५॥

तत्रैवाक्तम् आदिशब्देन स्वास्तिकपदमासने बोध्ये । एषामासनादीनां प्राणायामे  
आनुकूल्यात् । मा मा निराकरोदिति ब्रह्म मा मां मानिराकरोत् स्वसुमान्मा-  
वियोजयतु संसारे मापातयत्विति यावत् । अनिराकरणमिति आवयोः शिष्या-  
चार्ययोः ब्रह्मविषयिणीप्रीतिरेवास्तु । अतदनाम्नेति अतन्निरसनमुखेनाखिल-  
जडप्रपञ्चापनोदनीसद्धे ।

( टि० ) संशयादीति संशयभूमप्रमादप्रतारणाकरणापाटवानीति पञ्च-  
रोगाः । वैराज्यादीति वैराज्यादिसाकल्यं तुरीयं नैष्कल्यं तुरीयातीतमित्यन्वयः ।  
वैराज्यादयस्तु राजाधिराजायप्रसह्यसाहिने इति ऋग्वेदीयमन्त्रघटका गृह्यन्ते ।



स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः  
स्वस्तिनस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥

( टीका ) मन्दबुद्ध्यनुकम्पया प्रकारान्तरेण पुनः प्रार्थ्यते  
स्वस्तीति इन्द्रस्त्रिलोकीपतिः वृद्धश्रवाः वृद्धैर्महात्मभिः सदा पुरा-  
णादिषु श्रूयते इति वृद्धश्रवाः तादृश इन्द्रो नोस्माकं स्वस्ति  
दधातु ब्रह्मज्ञानार्थं क्षेमं सम्पादयतु । विश्ववेदाः सर्वज्ञः पूषा सूर्यः  
नोऽस्माकं स्वस्ति दधातु । ब्रह्ममात्रध्यानानुकूलं मनोभवत्वित्य-  
नुगृह्णातु । अरिष्टा अकुण्ठिता नेमिर्गतिर्यस्य सोऽयमरिष्टनेमिः  
ताक्ष्यः गरुडः नोऽस्माकं मनो ब्रह्मैकतानं स्वस्ति स्यादित्यनुगृह्णा-  
तु । बृहस्पतिः सुराचार्यो नोऽस्माकं करुणजालं ब्रह्ममात्रपर्यवसानं  
दधातु करोत्वित्यर्थः । ॐ शान्तिः ३ ॥ ६ ॥

तत्र सार्द्धान्तिकविधिवाक्यानि ।

ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत ॥ १ ॥

( टीका ) एवं पञ्च शान्तीः कृत्वा गुरुनमस्कारपूर्वकं वि-  
ध्यादिमहावाक्यजातं पठेदित्याह तत्रेति अर्द्धान्तिकं किमित्यत्र  
संहिताकाले ऋग्विरामाणामवसानमिति संज्ञा तेषामवसानानां  
क्रमकाले सन्ध्यभावादर्द्धान्तिकमिति संज्ञेति वेदलक्षणोऽभिहितम्  
विधिविचारस्तु लोचने द्रष्टव्यः । अविधेयब्रह्मप्रापकविधिच्छाया-  
पन्नवाक्यानि कानीत्यत आह सर्वमित्यादिना । स्वाज्ञानकल्पितव्य-  
क्तप्रपञ्चजातमिदं शङ्कगोचरं सर्वं ब्रह्मैव खलु । कार्यकारणयोरे-  
कत्वाभिप्रायेण सर्वप्रपञ्चस्य ब्रह्मत्वं युज्यते । कुतः । प्रपञ्च-

( टिप्पणी ) तत्रसार्द्धान्तिकोति अर्द्धान्तिकेन सहितानि सार्द्धान्तिकानि  
सार्द्धान्तिकानि च तानि विधिवाक्यानीति समासः अर्द्धान्तिकत्वञ्च क्रमका-  
लिकविच्छेदत्वम् तच्च एष्वेव विधिवाक्येषु न स्वर्गकामोऽप्योतिष्ठोमेन यजेते-



ज्ञातस्य तज्जत्वात्तत्स्थत्वात् तल्लत्वादिति तज्जलानीति कार्यकार-  
णकलनाशान्तःसन्निष्प्रतियोगिकं ब्रह्म स्वमात्रमित्युपासीत  
सदानुसन्धानं कुर्यादित्यर्थः ॥ १ ॥

आत्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति ॥ २ ॥

( टीका ) मुमुक्षुर्गुरुमुखतः पराक्प्रपञ्चग्रासप्रत्यञ्चमात्मान-  
मेवाहं ब्रह्मास्मीत्यावेदितवान् प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मास्मीति स्वात्मानं  
ज्ञातवान् इत्यर्थः ॥ २ ॥

आत्मावा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदि-  
ध्यासितव्यः ॥ ३ ॥

( टीका ) अरे मैत्रेयि अनात्मापन्हवसिद्धः परमात्मैव स्वमिति  
द्रष्टव्यः । तदुपायत्वेन सर्ववेदान्तार्थः श्रोतव्यः । युक्तिभिर्मन्त-  
व्यः प्रत्यग्भावमापन्नबुद्ध्या ब्रह्मैवाहमिति निदिध्यासितव्यः ।  
स्वात्मदर्शनमुद्दिश्य वेदान्तश्रवणमनननिदिध्यासनं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ३ ॥

महत्पदं ज्ञात्वा वृक्षमूले वसेत् ॥ ४ ॥

( टीका ) महद्भिर्ब्रह्मविद्वरिष्ठैः पचते ज्ञायते इति महत्पदं  
ब्रह्मस्वमात्रमिति ज्ञात्वा वृक्षमूले संसारवृक्षमूले ब्रह्मणि स्वे  
महिम्नि वा वसेत् स्वावशेषधियाऽवतिष्ठेतेत्यर्थः ॥ ४ ॥

साच्चिदानन्दात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ॥ ५ ॥

( टीका ) अनृतजडदुःखात्मकप्रपञ्चापन्हवसिद्धात्मानमद्वि-  
तीयं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मास्मीति भावयेत् ॥ ५ ॥

त्यस्मिन् विधिवाक्ये इति घनान्तपाठिभिर्व्युत्पन्नै वैदिकैरवगन्तव्यम् । तज्ज-  
लानीति निखिलप्रपञ्चस्य ब्रह्मणः सकाशाज्ज्ञातत्वात् तस्मिन्नेव च लीन-  
त्वात् स्थितेरुपादानन्तु बहुवचननिर्देशादर्थप्राप्तेऽप्येतिभावः ॥ १ ॥



अहं ब्रह्मास्मीत्यनुसन्धानं कुर्यात् ॥ ६ ॥

( टीका ) देहोहं जीवोवाहमिति परिच्छिन्नभावनां विहाय सदाहं प्रत्यगेवं परब्रह्मास्मीत्यनुसन्धानं कुर्यात् । नपुनर्देहाद्यात्मभावमियादित्यर्थः ॥ ६ ॥

सतज्ज्ञोबालोन्मत्तपिशाचवज्जडवृत्त्यालोकमाचरेत् ॥ ७ ॥

( टीका ) यस्तत्पदलक्ष्यं ब्रह्म स्वमात्रमिति जानाति सतज्ज्ञोब्रह्मविद्वरोविद्वान् । स्वलक्ष्यैकतानचित्तबालवत् उन्मत्तवत् पिशाचवच्च स्वलक्ष्येतरद्विस्मृत्य यथा लोका जडोयमिति मन्येरंस्तथा जडवृत्त्या लोकमाचरेत् । स्वशीलप्रकटनं न कुर्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः समाहितोभूत्वा तत्त्वं पदैक्यमेव सदा कुर्यात् ॥ ८ ॥

( टीका ) गुरुमुखतोवेदान्तार्थोब्रह्मेति जानातीति ब्राह्मणो ब्रह्मवित् पराकप्रवृत्तिनिरसनपूर्वकं प्रतीच्येवसमाहितकरणग्रामोभूत्वा तत्पदवाच्यसर्वज्ञत्वकिञ्चिज्ज्ञत्वादिकं त्यक्त्वा तत्त्वं पदलक्ष्यब्रह्मप्रतीच्योब्रह्माहमस्मीत्यैक्यानुसन्धानमेव सदा कुर्यात् कदापि परावरभेदबुद्धिं न कुर्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

सर्वत्राद्वैतब्रह्मबुद्धिं कुर्यात् ॥ ९ ॥

( टीका ) स्वान्नदृष्ट्या द्वैतप्रपञ्चे सत्यपि ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीत्यनुभवबलेन सर्वत्राद्वैतब्रह्मैव विद्यते इति ब्रह्मबुद्धिं कुर्यात् कदाप्यब्रह्मबुद्धिं न कुर्यादित्यर्थः ॥ ९ ॥

आशास्वरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दास्तुतिर्यादृच्छिकोभवेत् ॥ १० ॥

( टिप्पणी ) पराकप्रवृत्तिनिरसनेति बाह्यप्रवृत्तिं विहायेतिभावः । प्रतीच्येवेति आत्मन्येवेत्यर्थः । ब्रह्मप्रतीच्य इति ब्रह्मज्ञानेच्छुः ॥ ८ ॥



( टीका ) ब्रह्मविद्वरीयान् निर्विशेषब्रह्मस्वमात्रमिति ज्ञात्वा मानावमानास्पददेहादावात्मीयाभिमत्यभावादिगम्बरो भूत्वा ज्येष्ठ-  
कनिष्ठफललाभाभावात् न नमस्कारः स्वाहास्वधावषट्कार गोच-  
रकर्मसामान्यस्य संन्यस्तत्वात् न स्वाहाकारो न स्वधाकारः दुश्च-  
रित्रसच्चरित्राभावात् न निन्दास्तुतिविषयो भवति प्रवृत्तिनिवृत्ति-  
न्यावृत्तिवैरल्यपूर्वकं यादृच्छिको भवेत् स्वेच्छाचारोभवे-  
दित्यर्थः ॥ १० ॥

सर्वतः स्वरूपमेव पश्यन् जीवन्मुक्तिमवाप्स्य प्रा-  
रब्धप्रतिभासनाशपर्यन्तं स्वरूपानुसन्धानेन वसेत् ॥ ११ ॥

( टीका ) ब्रह्मविद्वरोमुनिः स्वाज्ञदृष्ट्या प्रपञ्चप्रसक्तावपि  
सर्वतोविभातनामरूपापवादाधिकरणं ब्रह्मैवास्मीति स्वस्वरूपमेव  
पश्यन् स्वरूपचित्तलयलक्षणजीवन्मुक्तिं प्राप्य परदृष्टिसमर्पितप्रा-  
रब्धभासनाशपर्यन्तं मद्व्यतिरिक्तमणुमात्रं न विद्यते इति श्रुत्यनु-  
रोधेन स्वस्वरूपानुसन्धानेन कालं नयेदित्यर्थः ॥ ११ ॥

स्वरूपानुसन्धानं विनान्यथाचार परो न भवेत् ॥ १२ ॥

( टीका ) पूर्वोत्तरवाक्ययोः पौनरुक्त्यमिति चेन्न प्रतिवाक्या-  
नां भिन्नोपनिषत्पठितत्वात्सर्वत्र न पुनरुक्तिः । ब्रह्मविद्वरः कदा-  
चिदपि स्वरूपानुसन्धानं विनान्यथाचार परो न भवेत् स्वमात्रस्मृतिं  
विना स्वातिरिक्तं न स्मरेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

वेदान्तश्रवणं कुर्वन् योगं समारभेत् ॥ १३ ॥

( टीका ) सर्ववेदान्तश्रवणमनतः स्वस्वरूपं निश्चित्य सर्वा-  
पहवसिद्धब्रह्मस्वमात्रमित्यस्पर्शयोगं समारभेत् निर्विकल्पकसमाधिं  
कुर्यादित्यर्थः ॥ १३ ॥

( टिप्पणी ) स्वरूपचित्तलयेति स्वसमाधिकरणकाश्चित्तलयः ।



आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याकपाटमुद्धाव्य मोक्षद्वारं  
विभेदयेत् ॥ १४ ॥

( टीका ) अपानाकुञ्चनेनाभिवर्द्धित प्राणाग्निसन्तप्तकुण्ड-  
लिनीशक्त्या ग्रन्थित्रयान्वित सुषुम्णा कवाटमुद्धाव्य तद्गतमोक्षद्वारं  
कैवल्यनाडिकां विभेदयेत् तद्गतचिदाकाशपर्यवसन्नो भवेदित्यर्थः ॥ १४ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ॥ १५ ॥

( टीका ) वाक्श्रोत्रादिदशेन्द्रियाणि स्वार्थाग्रहणपूर्वकं सङ्क-  
ल्पादिमन्मनसि नियच्छेत् मनोमात्रतया विलापयेत् ॥ १५ ॥

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आ-  
त्मनि ॥ १६ ॥

( टीका ) निःसङ्कल्पोपायतस्तन्मनो ज्ञानात्मनि निश्चयात्मक  
बुद्धयै नियच्छेद् बुद्ध्यात्मकज्ञानं ब्रह्माहमस्मीत्यखण्डाकारवृत्त्यु-  
पायतो महत्यात्मन्यव्यक्ते नियच्छेत् तच्च निर्विकल्पाख्यमहत्त-  
त्त्वात्मानं ब्रह्मभावं असन्नहीति श्रुतिसिद्धोपायतः स्वातिरि-  
क्तशान्तनिष्प्रतियोगिकपरमात्मनि नियच्छेत् परमात्मावशेषणा-  
मापादयेदित्यर्थः ॥ १६ ॥

आत्मानं चेद्विजानीयाद्यमस्मीति पुरुषः ॥ १७ ॥

( टीका ) क्षराक्षरभावविरलः पुरुष एव पुरुषः ॥ १७ ॥

किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनु सञ्चरेत् ॥ १८ ॥

( टीका ) परमात्मायमहमस्मीति प्रत्यञ्चमात्मानं विजानी-  
याच्चेद्यदि तदा स्वस्याप्तकामत्वेन कस्य कामाय किमिच्छन्  
शरीरमनुसञ्चरेत् कृच्छ्रचान्द्रायणादिना शोषयेत् घृतसूपादिना  
किमर्थं पोषयेत् देहेन्द्रियादिनिर्वर्त्यज्ञानफलस्याप्तादितत्वादित्यर्थः ॥  
तमेव धीरोविज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥ १८ ॥



नानुध्यायाद्ब्रह्मब्रह्मद्वन्द्वान्वाचोविग्लापनं हि तत् २० ॥

( टीका ) ब्राह्मणो ब्रह्मविद्भरः धीरोविद्वान् यः सर्वापन्हवतः संसिद्धोभवति तमेव परमात्मानं स्वमात्रमिति विज्ञाय तत्रैव प्रज्ञां निष्ठां कुर्वीत तन्निष्ठातिरेकेण पराग्वस्तुगोचरान् ब्रह्मब्रह्मद्वान्-  
नुध्यायान्नोच्चरेत् । तदुच्चारणतः किंभवेदित्यत आह वाच इति  
वाचोविग्लापनं कण्ठशोषणकरमित्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥

यतोनिर्विषयस्यास्य मनसोमुक्तिरिष्यते ॥ २१ ॥

( टीका ) यतोनिर्विषयस्य संकल्पादिवृत्तिविरलस्य मनसा  
ब्रह्ममात्रावशेषलक्षणा मुक्तिरिष्यते ॥ २१ ॥

अतोनिर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥ २२ ॥

( टीका ) अतो मुमुक्षुणा नित्यं स्वमनोनिर्विषयं निःसङ्कल्पं  
कार्यम् ब्रह्मातिरिक्तमनस्तत्कार्यनास्तीति भावनीयम् ॥ २२ ॥

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत् ॥ २३ ॥

( टीका ) अचिद्रूपं चित्तमेव जनिमृत्युरूपसंसृतिहेतुः हि  
शब्दोनिश्चयार्थः । ब्रह्मातिरिक्तचित्ततत्कार्यं नास्तीति शोधयेत् ।  
निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रमेव भावयेदित्यर्थः ॥ २३ ॥

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत् ॥ २४ ॥

( टीका ) स्वातिरेकेण यद्दृश्यते तद्दृश्यमनन्तकोटिब्रह्मा-  
ण्डजातं ब्रह्मातिरिक्तं नास्तीति ब्रह्माकारेणादृश्यतां नीत्वा  
ब्रह्ममात्रं चिन्तयेदित्यर्थः ॥ २४ ॥

मायाकार्यमिदं भेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम् ॥ २५ ॥

( टीका ) कालत्रयेऽपि स्वातिरेकेण या माया सा माया  
तत्कार्याणि अनन्तकोटिब्रह्माण्डानि तद्भेदोऽयमस्ति चेत्तदा तत्सर्वं  
ब्रह्मेति ब्रह्मभावनं कर्तव्यम् ॥ २५ ॥



देहोहमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥ २६ ॥

( टीका ) मायातत्कार्याभावे ब्रह्मभावनापि न कर्त्तव्या स्वातिरेकेण देहोस्मीतिवृत्तिर्दुःखरूपाचेत्तां विहाय ब्रह्माहमिति निश्चयः कार्यः ॥ २६ ॥

हृदयग्रन्थिरस्ति चेच्छेदयेद्ब्रह्मचक्रकम् ॥ २७ ॥

( टीका ) हृदित्यहङ्कारोऽयमिति साक्षी तयोस्तप्तायः पिण्ड-  
वत्तादात्म्यं हृदयग्रन्थिरस्ति चेद् ब्रह्मचक्रमादाय तच्छेदनं  
कुर्यात् ॥ २७ ॥

संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाप्नुयात् ॥ २८ ॥

( टीका ) अहं ब्रह्म न वेति संशये समुदिते ब्रह्माहमस्मीति  
निश्चयमाप्नुयात् ॥ २८ ॥

विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रं जीवितञ्चापि चञ्चलम् ॥ २९ ॥

( टीका ) चतुर्वेदषट्शास्त्रादिकमभ्यस्याथ ब्रह्मविचारः कर्त्तव्य  
इत्याकाङ्क्षायां जीवितस्यातिचञ्चलत्वेन ज्ञानभङ्गुरत्वात् क्षरा-  
पन्हव इति सिद्धान्तरतन्मात्रं विज्ञेयमिति पर्यवसितोर्थः ॥ २९ ॥

विज्ञाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदुपास्यताम् ॥ ३० ॥

( टीका ) यत एवमतः सर्वशास्त्राभ्यासं विहाय यदसत्प-  
ञ्चापन्हवसिद्धं सन्मात्रं तदेव स्वमात्रमित्युपास्यताम् तन्मात्रतया  
तिष्ठेदित्यर्थः ॥ ३० ॥

यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निस्त्रीकस्य क्व भोगभूः ॥ ३१ ॥

स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ३२ ॥

( टीका ) स्पष्टार्थः ॥ ३१ ॥

स्त्री सापेक्षभोगाशां विषाक्तदुग्धवत् त्यक्त्वा तत्कलनाकलित-



जगद्विमुखोभूत्वा तदसम्भवप्रबोधसिद्धं ब्रह्मसुखं स्वमात्रमिति  
भजेदित्यर्थः ॥ ३२ ॥

चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन् सति जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

( टीका ) जगत्त्रयोपलक्षितकार्याऽविद्यावस्तुनश्चित्तविकल्प-  
तत्वेन मिथ्यात्वात्तत्कल्पकचित्तं स्वातिरिक्तं नेतिज्ञानात्तत्कार्यं  
जगदपि विलीयते ततः यत्प्रयत्नतश्चित्तमात्रमपन्होतव्यं तदपन्ह-  
वसिद्धं ब्रह्मस्वमात्रमिति चिन्तयेदित्यर्थः ॥ ३३ ॥

तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥

सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यन्तं ब्रह्मैकं प्रविचिन्त्यताम् ॥ ३५ ॥

( टीका ) स्पष्टार्थः ॥ ३४ ॥ सुप्तेरुत्थाय पुनः सुप्त्यन्तमेव-  
मामृतेश्वानेकप्रपञ्चापन्हवसिद्धं निष्प्रतियोगिकैकब्रह्मैव स्वमात्र-  
मिति प्रविचिन्त्यतामित्यर्थः ॥ ३५ ॥

गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशच्छयानो वान्यथाऽपि वा ॥ ३६ ॥

यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ ३७ ॥

( टीका ) स्पष्टार्थः ॥ ३६ ॥ अनात्म कलनाविरलपरमात्म-  
न्येव सदा रमत इत्यात्मारामो मुनिर्ब्रह्मविद्वरीयान् गमनागमन-  
शयनादावपि यथेच्छया ब्रह्मैवास्मीति स्वच्छन्देन वसेत् ॥ ३७ ॥

ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यतिः ॥ ३८ ॥

( टीका ) ब्रह्मभावाय यतत इति यतिः मुमुक्षुर्भ्रुवोर्मध्ये नित्यं  
प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म ज्योतिर्लिङ्गं स्वाभेदेन सदा ध्यायेत् ॥ ३८ ॥

आत्मानमात्मना साक्षाद्ब्रह्म बुद्ध्वा सुनिश्चलम् ॥ ३९ ॥

( टीका ) जातिवर्णाश्रमोचितसत्कर्मानुष्ठाता मुनिः गुरु  
मुखाच्छ्रुत वेदशास्त्रपुराणार्थसंस्कृतात्मना मनसा पराक् प्रपञ्चा-



वभासक प्रत्यगात्मानं साक्षात् सुनिश्चलं निर्विशेषं ब्रह्म स्वमात्रमिति  
बुद्ध्वा ततः प्रयोजनाभावाद्देहजातिवर्णाश्रमविभ्रमकलितवेद  
श संपुराणादिकमपि पदपांशुमिव त्यजेत् । तन्निर्वर्त्य फलस्य  
सिद्धत्वादित्यर्थः ॥ ३९ ॥

देहजात्यादिसम्बन्धान् वर्णाश्रमसम्बन्धितान् ॥ ४० ॥

वेदशास्त्र पुराणादि पदपांशुमिव त्यजेत् ॥ ४१ ॥

एकाकी निस्पृहस्तिष्ठेन्नहि केन सहालपते ॥ ४२ ॥

( टीका ) स्पष्टार्थः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ यतिः सर्वत्र निस्पृहः

सन् रहस्येकाकी तिष्ठेत् कदाचिज्जनप्रसक्तावपि तत्सङ्गमिया  
नहि केन सहालपेत् । व्यवहारप्रसक्तो तत्तत्कार्यानुरोधेन नारायण  
इत्येव सदा प्रतिवाक्यं दद्यात् । ब्रह्माहमस्मीति ध्यानतत्परो मुनिः  
दण्डकमण्डलुवस्त्रादिकं परित्यज्य कौपीनधारी दिगम्बरो वा  
भूयादित्यर्थः ॥ ४२ ॥

दद्यान्नारायणेत्येवं प्रतिवाक्यं सदा यतिः ॥ ४३ ॥

मुनिः कौपीनवासा स्थान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ॥ ४४ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ ४५ ॥

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ४६ ॥

( टीका ) स्पष्टार्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ पराक्सापेक्षप्रत्यगात्मान

मधिकृत्य तदभिन्नपरमात्मनि यो रमते सोऽयमध्यात्मरतिः स्वे  
महिम्न्यासीनः स्वातिरिक्तनिरपेक्षः निर्गतसङ्कल्पो निराशिषः  
इहास्मिन् लोके निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रसुखार्थी स्वात्मनैव  
सहायेन एकाकी विचरेत्तिष्ठेद्वेत्यर्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

सन्दिग्धः सर्वश्रूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः ॥ ४७ ॥

अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च मर्ही चरेत् ॥ ४८ ॥



( टीका ) ब्रह्म भावापन्नोयतिर्वर्णाश्रमाचारविवर्जितः सन् सर्वभूतानामयं ब्राह्मणोवानवेत्यादि संदिग्धवेषोभूत्वा स्वातिरिक्त जातकामसंकल्पादि वृत्तिकदंबोच्चावचशब्दजालाग्रहणा पूर्वक मन्धवज्जडवन्मूकवद्भिरवच्चापि संकल्पविरलकीटवन्मर्हीचरेद्विहरेदित्यर्थः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ४९ ॥

यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५० ॥

लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५१ ॥

जिह्वया यद्रसं ह्यति तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५२ ॥

त्वचा यद्यत्स्पर्शेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत् ॥ ५३ ॥

( टीका ) मुमुक्षुश्चक्षुश्रोत्रादिकरणजातं तद्ग्राह्यरूपशब्दादिकं तद्गोचरज्ञानं च परमात्मेति भावयेत् स्वातिरेकेण सविषयचक्षुरादिकरणज्ञानं च नास्तीत्यर्थः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् ॥ ५४ ॥

( टीका ) ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति दृष्टिं ज्ञानमयीं सम्यग् ज्ञानरूपां कृत्वा परिदृश्यमानं जगत् ब्रह्ममयं ब्रह्ममात्रं पश्येत् भावयेदित्यर्थः ॥ ५४ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरागो यत्र वा भवेत् ॥ ५५ ॥

दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकनी ॥ ५६ ॥

( टीका ) द्रष्टृदीनां त्रिपुटी यत्र विरूपविलयं भजते तत्रैव तल्लयाधिकरणे अधिष्ठेयसापेक्षाऽधिष्ठानताविरलनिरधिष्ठानं ब्रह्मास्मीति दृष्टिः कर्तव्या ततोनासाग्रावलोकनी दृष्टिर्नकार्येत्यर्थः ॥ ५५ ॥ ५६ ॥



देवाग्न्यगारे तरुमूले गुहायां  
 वसेदसंगोलचितशीलवृत्तः ॥ ५७ ॥  
 निरिन्धनं ज्योतिरिवोपशान्तो  
 नचोद्विजेदुद्विजेद्यत्र कुत्र ॥ ५८ ॥

( टीका ) ब्रह्मैवाहमस्मीति ब्रह्मात्मभावरूढोमुनिः परैरल-  
 जितशीलवृत्तः सन् सर्वत्रासंगोभूत्वा देवाल्याग्न्यगारतरुमूले गुहादौ  
 समाधिं कुर्वन् वसेत् यत्र कुत्रापि स्वातिरिक्तप्रतीतावुद्विजेदपवदे-  
 द्यद्वा स्वातिरिक्तमस्तीति न चोद्विजेन्नापवदेत्स्वस्य स्वातिरिक्तस्य  
 च निष्प्रतियोगिकभावाभावज्ञानी ब्रह्ममात्रे स्वे महिम्नि निरि-  
 न्धनज्योतिरिवोपशान्तो भवेन्निर्यापारतयावतिष्ठेतेत्यर्थः ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

शान्तोदान्तउपरतस्तितिक्षुर्यो-  
 नूचानोद्यभिजज्ञौ ब्रह्मसमानः ॥ ५९ ॥  
 त्यक्तैषणोद्यन्तुस्तं विदित्वा  
 मौनी वसेदाश्रमे यत्र कुत्र ॥ ६० ॥

( टीका ) नियमितांतरिन्द्रियः शान्तः तथा बाह्येन्द्रियोदांतः  
 स्वातिरिक्तं नेत्युपरतः शीतोष्णादिद्वंद्वसहिष्णुस्तितिक्षुः श्रद्धा-  
 समाधानाभ्यां युक्तः सत्कुलप्रसूतोह्यनूचानः इत्थं भूतोयोगीब्रह्म-  
 समानो ब्रह्मभिन्नः प्रत्यगस्मीति ज्ञानाभ्यामात्मत्वेन सर्वमभिजज्ञौ  
 जानातिस्म एवं सर्वात्मभावरूढोमुनिर्ब्रह्मचर्ययज्ञप्रजोत्पादनश्रु-  
 षिदेवपितृश्रृणुतोमुक्तोह्यनृणः त्यक्तैषणात्रयोमौनी यः सर्वापन्हव-  
 सिद्धस्तमात्मानं विदित्वा यत्र कुत्र वाश्रमे कुटीचक्रबहूदकहंसपर-  
 महंसतुर्यातीतावधूतभेदभिन्ने वसेत् तिष्ठेदित्यर्थः ॥ ५९ ॥ ६० ॥

( टि० ) अतिमन्दाधिकारी कुटीचक्रः, मन्दाधिकारी बहूदकः, मध्य-  
 माधिकारी हंसः, उत्तमाधिकारी परमहंसः, इतियतिधर्मनिर्णये चतुर्णां  
 स्वरूपमुक्तम् । तुर्यातीतावधूतयोर्लक्षणान्तु पूर्वमेवोक्तम् । तत्स्वरूपान्तु तत  
 एवावगन्तव्यम् ॥



यमैश्च नियमैश्चैव ह्यासनैश्च सुसंयुतः ॥ ६१ ॥

नाडीशुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत् ॥ ६२ ॥

( टीका ) अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यदयार्जवक्षमाधृतिमिताहारावाह्यांतःशौचभेदेन दशविधयमैश्च तपःसंतोषास्तिक्यश्रद्धादानेशपूजनवेदांतश्रवणद्वीमतिजपव्रतभेदेन दशविधनियमैश्च स्वस्तिकगोमुखपद्मवीरसिंहभद्रमुक्तमयूरसुखासनभेदेन नवविधासनैश्च सुसंयुतः सन् योगी आदौ पूरककुंभकरेचकान्विताशीतिप्राणायामैर्नाडीशुद्धिं च कृत्वाऽथ सर्वापन्हवसिद्धं ब्रह्मनिष्प्रतियोगिकं स्वमात्रमिति भावनापूर्वकं केवलकुंभकप्राणायामं चरेत्कुर्यादित्यर्थः ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ॥ ६३ ॥

निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामं समाचरेत् ॥ ६४ ॥

( टीका ) सिद्धाद्यासनारूढयोगी सावधानेन चेतसा बाह्यांतर्विलसितसकलचिन्तां परित्यज्य नानाविधविकल्पशून्यतया निर्विकल्पो ब्रह्मणि समाहितचित्तः प्रसन्नात्मा ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति केवलकुंभकप्राणायामं समभ्यसेत्कुर्यादित्यर्थः ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

मरुदभ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत् ॥ ६५ ॥

इतरत्र न कर्त्तव्या मनोवृत्तिर्मनीषिणा ॥ ६६ ॥

( टीका ) रेचकादिसहितकेवलकुंभकात्मकमरुदभ्यसनं सर्वं ब्रह्मणि यथामनोयुक्तं पर्यवसन्नं भवेत्तथा समभ्यसेत् अतोमनीषिणा योगिना मनोवृत्तिरितरत्र ब्रह्मातिरिक्ते न कर्त्तव्या ब्रह्ममात्रविरूपविलयनेतव्यमित्यर्थः ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

ओं तत्सदिति साद्धान्तिकविधिवाक्यानि षट्षष्टिः

ओं तत्सदिति साद्धान्तिकविधिवाक्यानि षट्षष्टिः ॥ ६६ ॥

विधिप्रकरणविवरणं संपूर्णम् ॥



अथ सार्द्धान्तिकबंधमोक्षवाक्यानि ॥

अथ सार्द्धान्तिकबंधमोक्षमहावाक्यानि लिख्यन्ते ॥

विधिच्छायापन्नमहावाक्यसंस्कृतचित्तानां बंधमोक्षयाथात्म्या-  
वगतये बंधमोक्षमहावाक्यजातं प्रकटयति ॥ देहादीनित्यादिना ॥  
देहादीनात्मत्वेनाभिमन्यते सोभिमान आत्मनोबंधः ॥ १ ॥

तन्निवृत्तिर्मोक्षः ॥ २ ॥

( टीका ) चार्वाकादिबौद्धपंचकवदेहादीन्देहेंद्रियमनोबुद्ध्या-  
दीनात्मत्वेनचाभिमन्यते देहोहमिन्द्रियाग्रहमित्याद्याकारकोयः सो-  
भिमान आत्मनो बंधः तत्रात्मात्मीयाभिमतिवैरस्यपूर्वकं तन्निवृत्ति-  
र्मोक्षः देहाद्यभिमतिभावाभावप्रभवौ बंधमोक्षौ भवत इत्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥

देवमनुष्याद्युपासनाकामसंकल्पोबन्धः ॥ ३ ॥

( टीका ) स्वभेदेन कामनाधिया ब्रह्मविष्णुवीशेंद्रादिदेवानां  
मनुष्याणां शुकादिमुनीनामुपासना कर्त्तव्येति संकल्पोबंधः ॥ ३ ॥

कर्तृत्वाद्यहंकारसंकल्पोबंधः ॥ ४ ॥

( टीका ) सर्वकर्मकर्त्तातत्फलभोक्ताहमित्यहं भावनाकलितसं-  
कल्पोबन्धः ॥ ४ ॥

अणिमाद्यष्टैश्वर्याशासिद्धसंकल्पोबंधः ॥ ५ ॥

( टीका ) अणिमामहिमागरिमालघिमाप्राप्तिप्राकाश्येशित्वव-  
शित्वाष्टैश्वर्यं मे स्यादित्याशासिद्धसंकल्पोबंधः ॥ ५ ॥

( टि० ) अणिमा-परमाणुरूपतापत्तिः, महिमा-महत्त्वम्, लघिमा-तूल-  
पिण्डवल्गुत्व प्राप्तिः, गरिमा गुरुत्वम्, प्राप्तिः अद्भुत्यप्रणायि चन्द्रादिस्पर्-  
शनशक्तिः, प्राकाम्यमिच्छानभिघातः, भुमाबुन्मज्जति निमज्जति यथादके,  
शरीरान्तःकरणेश्वरत्वमीशित्वम्, वशित्वम् सर्वत्र प्रभविष्णुत्वम् सर्वाण्येव-  
भूतानि अनुगामित्वात् तदीप्सितं नातिक्रामन्ति ।



यमाद्यष्टाङ्गयोगसंकल्पोबंधः ॥ ६ ॥

( टीका ) यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमा-  
ध्यष्टाङ्गयोगः साधनीय इति संकल्पोबंधः ॥ ६ ॥

केवलमोक्षापेक्षाकामसंकल्पोबंधः ॥ ७ ॥

( टीका ) स्वाविद्याबंधमोक्षो मे स्यादिति केवलमोक्षापेक्षा  
संकल्पोपि बंध एव स्वस्य नित्यमोक्षस्वरूपत्वेन बंधसापेक्षसंकल्प-  
स्यापि न विशेषत्वेन बंधत्वं सिद्धमित्यर्थः ॥ ७ ॥

संकल्पमात्रसंभवोबंधः ॥ ८ ॥

( टीका ) किंवहुना संकल्पमात्रस्य संभवः उत्पत्तिरी-  
बंधोभवति ॥८॥ मोक्षसङ्कल्पस्यापि बंधत्वे मोक्षः कीदृश इत्यत्रा

नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारमुखदुःखविष-  
यसमस्तक्षेत्रममताबंधक्षयोमोक्षः ॥ ८ ॥

( टीका ) नित्येति नित्यानित्यवस्तुनोरात्मानात्मनोर्निष्पत्ति-  
योगिकभावाभावरूपतया विचारात् स्वाज्ञत्वविकल्पितनित्यसंसार-  
मादुर्भूतमुखदुःखविषयपूरितस्वदेहादिसमस्तक्षेत्रेष्वहंता ममता च  
बंधः तत्क्षय एव मोक्षः ॥ ८ ॥

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ॥ १० ॥

बंधाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥ ११ ॥

( टीका ) मनुष्यादीनां बंधमोक्षकारणां मन एव तत्रविषया-  
सक्तं मनोबंधहेतुः निर्विषयं मनोमुक्त्यै भवतीति स्मृतम् ॥ १० ॥ ११ ॥

ममेति बध्यते जंतुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥ १२ ॥

( टीका ) जन्तुः सामान्यं जीवजातं देहदारादावहंममेति  
अभिमानतोबध्यते निरहंममाभिमानतोबंधान्मुच्यते ॥ १२ ॥



अमत्वेन अवैज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः ॥ १३ ॥

स्वस्मिन् स्वातिरिक्ते चाहंत्वेन ममत्वेनच जीवोभवतीति-  
तत्रपुनरहंकारममकाराभावेन केवलः परमात्मैव भवति ॥ १३ ॥

स्वसंकल्पवशाद्ब्रह्मोनिःसंकल्पाद्विमुच्यते ॥ १४ ॥

( टीका ) इदं मेस्यादिदं मेस्यादिति जीवः स्वसंकल्पवशा-  
द्बध्यते संकल्पनीयस्वातिरिक्तं किमपि नेतिनिःसङ्कल्पवशा-  
द्विमुच्यते ॥ १४ ॥

द्रष्टादृश्यवशाद्ब्रह्मो दृश्याभावेविमुच्यते ॥ १५ ॥

( टीका ) द्रष्टा स्वदृश्याभिनिवेशतोबध्यते तदभिमानाभा-  
वाद्विमुच्यते ॥ १५ ॥

इक्षामात्रमविद्येयं तन्नाशोमोक्षउच्यते ॥ १६ ॥

भोगेच्छामात्रकोबंधस्तत्यागोमोक्ष उच्यते ॥ १७ ॥

( टीका ) आविद्यकभोगमात्रेच्छा बंधोविद्यया तत्यागोमोक्ष  
उच्यते ॥ १६ ॥ १७ ॥

चित्तचैत्यकलितोबंधस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते ॥ १८ ॥

( टीका ) चित्तजीवस्य चित्तचैत्ययोगतोबंधो भवति स्वाति-  
रिक्तचित्तचैत्यवैरल्यज्ञानतोमोक्षोभवति ॥ १८ ॥

अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः ॥ १९ ॥

( टीका ) सर्वत्रास्थाऽनास्थे बंधमोक्षहेतु भवंत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ॥ २० ॥

( टीका ) सर्वोहि जंतुः सकामकर्मणा आगाम्यादिकर्मणा-  
पिबध्यते निष्कामकर्मणा विद्ययाच कर्मकृतबंधनाद्विमुच्यते ॥ २० ॥

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्ग्राहंत्ववेदनम् ॥ २१ ॥



( टीका ) स्वस्वरूपावस्थानमुक्तिः स्वरूपविभ्रंशतोद्देहादात्त  
हंत्ववेदनं बंधोभवति ॥ २१ ॥

चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष उच्यते ॥ २२ ॥

( टीका ) स्वरूपतश्चेतश्चलनाचलने बंधमोक्षहेतू भवतः  
इत्यर्थः ॥ २२ ॥

बन्धोहि वासनाबद्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः ॥ २३ ॥

( टीका ) बद्धः संसारी नानाविधवासनया बद्धोभवति हीनिःसंशयार्थः सर्ववासनाक्षयान्मोक्षोभवति ॥ २३ ॥

पदार्थभावनादार्ढ्यं बंध इत्यभिधीयते ॥ २४ ॥

वासना तानवं ब्रह्मन् मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २५ ॥

( टीका ) स्वातिरिक्तपदार्थो मे स्यादिति दृढवासनया बध्यते  
हेब्रह्मन् निदाघतद्वासनाजातस्य तानवमभावस्तेन यः सिध्यति स  
मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ २४ ॥ २५ ॥

न मोक्षो न भस्मः पृष्ठे न पाताले न भूतले ॥ २६ ॥

सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयोमोक्ष इतीष्यते ॥ २७ ॥

( टीका ) एवं भूतोमोक्षः कासनमर्हतीत्यत्र पाताले भूतले  
नभः पृष्ठे ब्रह्मलोकादावपि मोक्षो न विद्यते चेतःकल्पित-  
सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयोभवति तत्क्षयतः प्रादुर्भूतोमोक्ष  
इतीष्यते ॥ २६ ॥ २७ ॥

मोक्षोमेस्त्विति चिन्तांतर्जाताचेदुत्थितं मनः ॥ २८ ॥

( टीका ) स्वांतर्मनसि बंधसापेक्षमोक्षोमेस्त्विति तच्चिन्ता  
जाताचेत्स्वातिरेकेण मन उत्थितं भवति ॥ २८ ॥



मननोत्थे अनस्येष बंधः सांसारिकोमतः ॥ २६ ॥  
 एवं मननोत्थे मनसि एष सांसारिकोबंधोभवतीति मतः ॥ २६ ॥

तदमार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम् ॥ ३० ॥  
 तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ ३१ ॥

ओंतत्सदितिसार्द्धांतिकबंधमोक्षवाक्यान्धे

कन्निशत् ॥ ३१ ॥ ॥

( टीका ) तन्मनोमार्जयितव्यं तदमार्जनतोबंधो दृढायते  
 तत्प्रमार्जनमात्रेण मोक्षः स्वत एवाविर्भवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स्वातिरिक्तवस्तुर्चितासामान्यं बंध उच्यते तच्चितापन्हवा-  
 न्मोक्षः स्वत एव प्रसीदतीतिस्मृतैः आहत्यवाक्यसंख्या सप्तन-  
 वतिः ॥ ६७ ॥

बंधमोक्षप्रकरणां संपूर्णम् ॥ ॥

अथ सार्द्धांतिकाविद्वन्निंदावाक्यानि । अथयोऽन्यां  
 देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा  
 पशुः ॥ १ ॥

( टीका ) बंधमोक्षमहावाक्यार्थसंस्कृतधियामज्ञानिनिंदामहा-  
 वाक्यानुसंधानतोमिथः सापेक्षस्वाज्ञस्वज्ञकलनाऽपन्हवसिद्धनिष्पति-  
 योगिकब्रह्ममात्रावगतये अथ सार्द्धांतिकाविद्वन्निंदामहावाक्यानि  
 लिख्यन्ते अथेत्यादिना अविद्वन् निंदारभ्यत इत्यथशब्द आरंभार्थः  
 मद्भिन्नोऽयमन्योऽसावीश्वरः परमात्मा वा तस्मादप्यहमन्योजीवो-  
 देहोवास्मीति आवयोर्भिन्नमिदं जगदिति यः स्वान्यां देवतामुपास्ते  
 यथा ज्ञानगंधविकलोऽयं पशुस्तथासोऽयं न वेदयत एवमतो  
 विद्वानहमेवेदं सर्वमिति जानीयादित्यर्थः ॥ १ ॥

अत्र भिदामिव मन्यमानः क्षतधा सहस्रधा भिन्नो  
 मृत्योः समृत्युमाप्नोति ॥ २ ॥



( टीका ) अत्रास्मिन्निर्भेदे ब्रह्मणि जगज्जीवेशसाक्षिणां मिथोभिदामिव मन्यमानः स्वाज्ञोमूढः स्वाधिष्ठितशरीरेण साकं शतधा सहस्रधा भिन्नः स्वाविद्यया खंडितः सन्योमुह्यति समृत्योर्मृत्युंजनिमृतिपरंपरामप्नोति घटीयंत्रवदविश्रांतं संसरतीत्यर्थः ॥ २ ॥

कर्तृत्वाद्यहंकारभावनारूढोमूढः ॥ ३ ॥

( टीका ) तूलांतःकरणाविद्याकल्पितशरीरमास्थाय कर्त्ताहंकारभावनारूढोमूढः स्वाविद्यावृतोभवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

मृत्योःसमृत्युमाप्नोति यं इह नानेव पश्यति ॥ ४ ॥

( टीका ) इह ब्रह्मगयनानारूपे यस्तुजगज्जीवेशादि नानेव पश्यति समृत्योर्मृत्युमाप्नोतीत्युक्तार्थम् ॥ ४ ॥

अनुभूतिं विना मूढोवृथा ब्रह्मणि मोदते ॥ ५ ॥

( टीका ) जलाशयप्रतिबिंबितसहकारशाखाग्रलंबमानफला स्वादनमोदो यथा नार्थवान्तथामूढः स्वाज्ञः प्रत्यगभिन्ने ब्रह्मणि ब्रह्माहमस्मीत्यनुभूतिं विना वृथा मोदते स्वानुभूत्यन्वितज्ञानं कैवल्यफलदं हितदिति स्मृतेः ॥ ५ ॥ ॥

प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ॥ ६ ॥

अष्टाङ्गश्च चतुष्पादं त्रिस्थानं पंचदैवतं ॥ ७ ॥

ॐकारं यो न जानाति ब्राह्मणो न भवेत्तु सः ॥ ८ ॥

( टीका ) अकारोकारमकारअर्धमात्राविन्दुनादकलाकलातीततत्परभेदेनाष्टाङ्गं विश्वतैजसप्राज्ञतुर्यभेदेन विराट्सूत्रबीजतुर्यभेदेन चतुष्पादं कैलासवैकुण्ठब्रह्मलोकभेदेन च त्रिस्थानं तमोरजःसत्त्वभेदेन जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदेन ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवभेदेन पंचदैवतं एवमुक्तलक्षणलक्षितमोकारं परमात्मानं स्वमात्रमिति यो न जानाति स तु ब्रह्मनिष्ठो न भवतीत्यर्थः ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥



अतिवर्णाश्रमं रूपं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ९ ॥

यो न जानाति सो विद्वान्कदा मुक्तो भविष्यति ॥ १० ॥

( टीका ) वर्णाश्रमविशिष्टदेहोपलक्षिताऽविद्या पदतत्कार्य-  
जातमतीत्य वर्त्तत इत्यतिवर्णाश्रमं रूपं सच्चिदानन्दलक्षणं ब्रह्म  
निष्प्रतियोगिकं स्वमात्रमिति यो न जानाति सोऽयमविद्वान् कदा  
वा मुक्तो भविष्यति न कदापीत्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥

कुशलाब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ॥ ११ ॥

तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यांति च ॥ १२ ॥

( टीका ) स्वातिरिक्तदेहात्मधिया सर्वत्र इदं मे स्यादिदं मे-  
स्यादिति सुरागिणः अतएव ब्रह्ममात्रवृत्तिहीना अपि न्यायादित-  
त्रत्रयपारीणत्वेन सकृद्भाष्यावलोकनतो ब्रह्मवार्त्तायामतीवकुशला  
भवन्ति तद्वार्त्ताकौशल्येन ते कृतकृत्याभवेयुरित्यत्राह तेपीति ब्रह्मानु-  
भववृत्त्यभावात्तेऽपि अज्ञानतया पुनरायान्ति यान्ति च तेषामाभासज्ञा-  
नित्वेन जननमरणदिसंसारनिवृत्तिर्न स्यादित्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशीज्ञानवर्जितः ॥ १३ ॥

( टीका ) ज्ञानदण्डवैकल्येन काष्ठदण्डो येन धृतः स सर्वाशी  
कुक्षिम्भरिर्भवति तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः भिक्षा  
मात्रेण योजीवेत्सपापी यतिवृत्तिहेतिश्रुतेः ॥ १३ ॥

स्वायत्तमेकांतहितं स्वेप्सितत्यागवेदनम् ॥ १४ ॥

यस्य दुष्करतां यातं धित्तं पुरुषकीटकम् ॥ १५ ॥

( टीका ) यस्य स्वाज्ञानमहिम्ना इदं मे स्यादिदं मे स्यादिति-  
स्वेप्सितोयः कामपूगः तद्ब्रह्मातिरिक्तं नेतित्यागवेदनं स्वातिरिक्ता  
पन्हवसिद्धस्वमात्रज्ञानं सहायांतरनैरपेक्ष्येण हितान्तराभावादेकांतहि-  
तं स्वायत्तं स्वेनैव निर्वर्तितुं शक्यमपि दुष्करतां यातं कर्तुमश-



क्यतया भातं भवेत्तं पुरुषकीटकं धिग् धिगिति श्रुतिः  
कुत्सयतीत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥

अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न जानन्ति यदातदा ॥ १६ ॥

भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क्लृप्तिः केहवासुखम् ॥ १७ ॥

( टीका ) अखिलवेदशास्त्राध्येतारो ब्राह्मणा यदा निष्प्रतियोगिकाद्वितीयब्रह्मतत्त्वं स्वमात्रमिति न जानन्ति तदैव ते भ्रान्ता भवन्ति तेषां स्वातिरिक्तमुक्तिः स्वमात्रसुखं वा केह सिध्यति तदधीतमखिलं भारमेवेत्यर्थः भारोऽविवेकिनः शास्त्रमिति श्रुतेः ॥ १६ ॥ १७ ॥

अज्ञानोषहतो बाल्ये यौवने वनिताहृतः ॥ १८ ॥

शेषे कलत्रचिन्तार्तः किंकरोति नराधमः ॥ १९ ॥

( टीका ) बाल्यकौमारयौवनाद्यवस्थासु स्वश्रेयश्चित्तनं विना स्वाज्ञानतत्कार्यकलत्रपुत्रादिचित्तयाभिहितः सन् तत्सत्त्वाऽसत्त्वाभ्यामार्तिं भजति सनराधमः स्वात्मनोहितं किंकरोति न किमपीत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन जंतवः ॥ २० ॥

धराविवरमग्नानां कीटानां समतां गताः ॥ २१ ॥

( टीका ) मानुषभावापत्या जंतवो ब्राह्मणाः सर्वापन्धवसिद्धं ब्रह्मनिष्प्रतियोगिकस्वमात्रमिति परमार्थचिन्तनं विनेदं मेस्यादिति च्छा तत्कुंठकोद्वेषः आभ्यामिच्छाद्वेषाभ्यां सम्यगुत्थेन द्वंद्वमोहेन मूढाः धराविवरमग्नकीटानां समतां गताः प्राप्ता इत्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥

अतत्सदितिसाद्वर्तिका विद्वन्निन्दावाक्यान्येक  
विंशतिः ॥ ॥



( टीका ) आहत्यवाक्यानि ॥ ११८ ॥ इति अविद्वन्निन्दा  
प्रकरणं संपूर्णम् ॥ ३ ॥ ॥

अथ सार्धान्तिकजगन्मिथ्यावाक्यानि ।

( टीका ) अज्ञाननिन्दामहावाक्यार्थसंस्कृतानामज्ञत्वहेत्वतत्पप-  
ञ्चापन्हवसिद्धब्रह्ममात्रावगतयेऽथसार्धांतिकजगन्मिथ्यामहावाक्यानि  
लिख्यन्ते नान्यदित्यादिना ।

नान्यत्किंचन मिषत् ॥ १ ॥

ब्रह्मातिरेकेण किंचन किंचिदपि अन्यत् मिषच्चतत् जङ्गमं  
स्थावरं च नास्तीत्यर्थः ॥ १ ॥

वाचारम्भणं विकारोनामधेयं ॥ २ ॥

( टीका ) मृत्स्थानीयकारणब्रह्मातिरिक्तघटस्थानीयकार्यज-  
गत् वाचारम्भणं वाग्विकारः नामधेयं नाममात्रं मृत्स्थानीयब्रह्मा-  
तिरिक्तघटशरावादिस्थानीयं जगज्जातं नास्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

अतोऽन्यदार्त्तम् ॥ ३ ॥

( टीका ) अतोब्रह्मणोन्यज्जगज्जातमात्रं मिथ्येत्यर्थः ॥ ३ ॥

नतु तद्वितीयमस्ति ॥ ४ ॥

( टीका ) तद्वैतब्रह्मातिरेकेण द्वितीयमविद्यापदं नत्वस्ति । ४ ।  
नात्र काचन भिदास्ति नैव तत्र काचनभिदास्ति । ५ ॥

( टीका ) अत्र प्रत्यगात्मनि कामसंकल्पादिरूपेण न कदाचन  
भिदास्ति तत्र परमात्मनि नामरूपाकारेण नैव काचनभिदास्ति ॥ ५ ॥

सर्वविकारजातं मायामात्रम् ॥ ६ ॥

१ प्रातिलोभ्येन अश्वतीति प्रत्यक् जीवः, तदभिने ब्रह्मणीत्यर्थः ।



( टीका ) स्वातिरेकेण यद्यद्विकारजातं भाति तत्तत्सर्वं  
मायामात्रं मिथ्येत्यर्थः ॥ ६ ॥

सर्वत्र न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिः ॥ ७ ॥

( टीका ) सर्वत्र अखण्डैकरसे ब्रह्मणि द्वैतप्रपञ्चसिद्धिर्न-  
ह्यस्ति ॥ ७ ॥

नास्ति द्वैतं कुतोमर्त्यम् ॥ ८ ॥

( टीका ) अद्वैतस्य निष्प्रतियोगिकत्वेन जगज्जीवेशादिभे-  
दभिन्नं द्वैतरूपं जगन्नास्ति तत्रावान्तरभेदरूपं मर्त्यं कुतः  
संभवति ॥ ८ ॥

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्त्तेत न संशयः ॥ ९ ॥

( टीका ) शशविषाणकल्पः प्रपञ्चो यदि विद्येत भवेत्तदा ब्र-  
ह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति ज्ञानतो निवर्त्तेतेत्यत्र न हि संशयोस्ति ॥

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः । १० ॥

( टीका ) इदं परिदृश्यमानं द्वैतजातं मायाकार्यत्वेन माया-  
मात्रं परमार्थतस्त्वद्वैतं निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रमवशिष्यतइत्यर्थः १० ॥

विकल्पो विनिवर्त्तेत रूढिपतो यदि केनचित् ॥ ११ ॥

( टीका ) निष्प्रतियोगिकब्रह्मणि गुरुशिष्यशास्त्रादिविकल्पः  
केनचित्स्वाज्ञेन यदिविकल्पितः स्यात्तदा स्वज्ञदृष्ट्या निवर्तेत ॥ ११ ॥

उपदेशादयंवादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥ १२ ॥

( टीका ) उपदेशात् उपदेशार्थं गुरुशिष्यादिवादो विकल्पितो-  
ऽभूत् केवलं ब्रह्ममात्रस्यैव तत्त्वान्नास्त्यनात्मेति निश्चिन्वति श्रुत्यर्थ-  
ज्ञानतः निष्प्रतियोगिकाखण्डैकरसब्रह्मणि स्वमात्रमिति ज्ञाते गुरु-  
शिष्यशास्त्रादिभेदभिन्नं द्वैतं न विद्यते अद्वैतस्य निष्प्रतियोगिक-  
स्वमात्रत्वादित्यर्थः ॥ १२ ॥



द्वितीयकारणाभावादनुत्पन्नमिदं जगत् ॥ १३ ॥

यथैवेदं नभःशून्यं जगच्छून्यं तथैवहि ॥ १४ ॥

इदं प्रपञ्चं यत्किञ्चिद्यज्जगति वीक्ष्यते ॥ १५ ॥

दृश्यरूपं च दृश्यं सर्वं द्वाशविषाणवत् ॥ १६ ॥

इदं प्रपञ्चनास्त्येवनोत्पन्नं नो स्थितंजगत् ॥ १७ ॥

चित्तंप्रपञ्चमित्याहुर्नास्तिनास्त्येवसर्वदा ॥ १८ ॥

मायाकार्यादिकं नास्तिमायानास्तिभयं नहि ॥ १९ ॥

परंब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्थ मनोनहि ॥ २० ॥

( टीका ) स्वातिरिक्तकारणांतरवैरल्यादिदं जगदनुत्पन्नमेव कार्यकारणभोरप्यजत्वात् सवाह्याभ्यंतरोहज इतिश्रुतेः एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिज्जायत इति गौडपादाचार्योक्तेश्च ॥ १३ ॥ स्वाज्ञ-  
दृष्ट्या जन्म गच्छतीति जगत् सम्यग्ज्ञदृष्ट्या नभोवच्छून्यमेव ब्रह्मणः स्वमात्रत्वादित्यर्थः ॥ १४ ॥ इदं प्रपञ्चमित्यादिलिङ्गव्य-  
त्ययश्छांदसः अयं प्रपञ्चः स्वाविद्यापादस्तत्र जगति स्वाविद्यापादे सत्यत्वेन व्यावहारिकत्वेन प्रातिभासिकत्वेन वा घटादिदृश्यरूप-  
मिन्द्रियादिदृश्यं च यद्यत्किञ्चीक्ष्यते तत्सर्वं शशविषाणवदलीकं मंतव्यमित्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥ स्वाज्ञादिदृष्टिमोहे सत्यसतिनि-  
विशेषे ब्रह्मणि अयं प्रपञ्चोनास्त्येव उत्पत्यादिविशिष्टं जगदस्तीति चेत्तत्राह नेति कदापि नोत्पन्नं न स्थितं न नष्टं चेति मंतव्यं प्रपञ्च इतिव्यवहारः किंमूलक इत्यत आह चित्तमिति प्रपञ्चकल्पनामूलं चित्तमित्याहुः ब्रह्मातिरेकेण प्रपञ्चकल्पनामूलचित्तमपि सर्वदा नास्ति नास्त्येवेत्यावृत्तिरपन्हवार्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ निष्प्रतियो-  
गिकनिर्माणकालत्रयेपि या माया नास्ति सा माया तत्कार्यमनंत-  
कोटिब्रह्मांडजातं ब्रह्माहमस्मीति वृत्तिमन्मनोपि तत्कल्पितद्वैतजं भयं चापि नह्यस्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥



वंध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ २२ ॥

शशशृंगेण नागेन्द्रोमृतश्चेज्जगदस्ति सत् ॥ २३ ॥

मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ २४ ॥

गंधर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ॥ २५ ॥

गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ॥ २६ ॥

मासात्पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगद्भवेत् ॥ २७ ॥

गोस्तनादुद्धवं क्षीरं पुनरारोपणेजगत् ॥ २८ ॥

उवात्ताग्निमंडले पद्मवृद्धिश्चेदस्त्विदं जगत् ॥ २९ ॥

ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेदस्त्विदं जगत् ॥ ३० ॥

अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नास्ति ॥ ३१ ॥

सर्वदा भेदकलनं द्वैताद्वैतं न विद्यते ॥ ३२ ॥

नास्ति नास्ति जगत्सर्वं गुरुशिष्यादिकं न हि ॥ ३३ ॥

सच्चिदानंदमात्रो ह्यमनुत्पन्नमिदं जगत् ॥ ३४ ॥

( टीका ) कालत्रयेऽप्यलब्धात्मकवंध्याकुमारकठोरवचनेन धीरो

भीतश्चेत् ॥ २१ ॥ शशशृंगां कुशेन नागेन्द्रोभिन्नमूर्ध्वासन्मृतश्चेत्

॥ २२ ॥ मरुमरीचिकां पीत्वा तृषार्तो विदुषश्चेत् ॥ २३ ॥ सुमूर्षा-

वस्थाविभातगंधर्वनगरं नित्यं चेत् ॥ २४ ॥ गगनाज्ञानिविकल्पित-

गगननीलिमा वास्तवश्चेत् ॥ २५ ॥ मासत्रयात्पूर्वं मृतो जरठः

पुनः स्वगृहमेत्य दारेषु सूतुं जनयेच्चेत् ॥ २६ ॥ गोस्तनजं क्षीरं

पुनस्तन्मार्गेण समारोपितं चेत् ॥ २७ ॥ वह्निज्वाला मंडले पद्म-

वृद्धिश्चेत् ॥ २८ ॥ निर्विशेषब्रह्मज्ञानिनो हृदयं स्वाज्ञैर्विस्पष्टं ज्ञातं

चेत्तदा निर्विशेषब्रह्मणि कालत्रयेऽपि जगत्सत्यं स्यादेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

चतुराननकुक्षौ स्वकुक्षावपि कालत्रयेऽपि सर्वथा सर्वप्रकारभेदकलनं

सप्रतियोगिकद्वैतात्मकं जगन्न विद्यते ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अनृतज-

हदुःखप्रपंचापन्हवसिद्धनिष्प्रतियोगिकसच्चिदानंदमात्रो ह्यं गुरुशि-

ष्यादिभेदकलितं जगत्कालत्रयेऽपि नोत्पन्नमित्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥



ॐ तत्सदितिसार्द्धातिकजगन्मिथ्यावाक्यानित्र-  
यस्त्रिंशत् अथसार्द्धातिकोपदेशवाक्यानि स य एषोऽ  
णिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मातत्त्वमसि-  
ध्वेत केतो ॥ १ ॥

अभयं वैजनकप्राप्तोसि ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यमद्विसांचापरिग्रहं च सत्यं च यत्नेनहेर-  
क्षतो हेरक्षतो हेरक्षतइति ॥ ३ ॥

( टीका ) प्रतियोगिविनिर्मुक्तपरमात्माज उच्यते प्रतियोगि-  
विनिर्मुक्तमनात्माप्यज एव हीतिस्मृतैः आहत्य वाक्यान्येकपंचाश-  
दुत्तरशतं ॥ १५१ ॥ जगन्मिथ्याप्रकरणविवरणं संपूर्णम् ॥ ४ ॥  
जगन्मिथ्यामहावाक्यार्थसंस्कृतानां जगदपन्हवसिद्धं ब्रह्मास्मीत्युप-  
देष्टुं अथ सार्द्धातिकोपदेशमहावाक्यानि लिख्यन्ते स य इत्यादिना  
य एषोऽणिमासर्वप्रत्यक्त्वेनाभिमतः स एव परमात्मा तदज्ञानविक-  
ल्पितमिदं सर्वमैतदात्म्यं तत्सत्तातिरिक्तसत्ताभावात् यत्स्वातिरिक्त-  
प्रपंचसत्ता प्रदं तदेव सत्यं यत्सत्तामात्रतयाऽवशिष्यते स परमात्मा  
हेधेतकेतो यत्परमात्मरूपेणावशिष्टं तत्त्वमसि तदेव त्वमसि नेतर  
इत्यर्थः ॥ १ ॥ हेजनक भयहेतुद्वैतापन्हवसिद्धपरमाद्वयरूपमभयमेव  
ब्रह्म प्राप्तोसि ब्रह्मैव भवसीत्यर्थः ॥ २ ॥ हेशिष्या यूयं निर्विशेषं-  
ब्रह्मप्राप्तिसाधनतया बाह्यमांतरं चेति द्विविधं ब्रह्मचर्यं स्मरणं  
स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणं संकल्पोध्यवसायश्च क्रियानि-  
वृत्तिरेव च एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः विपरीतं ब्रह्मचर्यं  
मनुष्येयं मुमुक्षुभिरिति श्रुतिसिद्धाष्टांगमैथुनवर्जितं बाह्यब्रह्मचर्यं  
ब्रह्मानुसंधानमांतरं प्राणिमात्रापीडनमर्हिसां च प्राणधारणो तरा-  
परिग्रहं च भूतहितयथार्थाभिभाषणं सत्यं च यथाबलं रक्षत आवृत्ति-  
रावरार्था रक्षत इतिच्छांदसम् ॥ ३ ॥



तत्त्वमसि त्वंतदसि ॥ ४ ॥

यन्मनसा न मनुरे येनाहुर्मनोमतम् ॥ ५ ॥

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥\*

यत्परं ब्रह्म सर्वान्मा विश्वस्यायतनं महत् ॥ ७ ॥

( टीका ) त्वपदवाच्योजीवः त्वंपदलक्ष्यं प्रत्यगात्मा तत्पद-  
वाच्यईश्वरः तत्पदलक्ष्यं ब्रह्मत्वतत्पदवाच्यार्थत्यागपूर्वकं जहदा-  
दिलक्षणाया शोधित त्वंतत्पदलक्ष्ययोरसिपदघटकभागलक्षणायैक्य-  
भागसिद्धं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मावशिष्यतेजहदादिभेदेन लक्षणात्रिविधा  
गंगायां घोषः प्रतिवसतीत्यत्र गंगाप्रवाहे तदसंभवात् तत्प्रवाहत्या-  
गपूर्वकं लक्षणाया तत्तीरे घोषो वर्तत इति या साजहल्लक्षणा मनो-  
ब्रह्मेतिवत् मनस्त्वद्वृत्तित्यागातद्वृत्तिसहस्रभावाभावप्रकाशकतया प्र-  
त्यगात्मा लक्ष्यते मंचाः क्रोशंतीत्यत्र वाच्यार्थापरित्यागपूर्वकं  
मंत्रस्थाः पुरुषाः क्रोशंतीति या लक्ष्यते सेयमजहल्लक्षणा सत्त्वं  
ज्ञानमनंतं ब्रह्मेतिवत् सत्यादिवाक्यार्थे सत्यादिकमत्रिहाय सत्यादि-  
स्वरूपं ब्रह्मेति लक्ष्यते कश्चिदेको देवदत्तः काश्मीरदेशे सार्वभौमो  
दृष्टः कालविपर्ययात्स एव केरलदेशे तु भिक्षाशी दृष्टः तद्देश-  
तत्कालैतद्देशैतत्कालगतसार्वभौमत्वं भिक्षुतां विहाय तद्देहमात्रग्रह-  
लक्षणाभागलक्षणा तत्त्वमसीतिवत् त्वंतत्पदगतवाच्यार्थैकदेशत्या-  
गपूर्वकत्वंतल्लक्ष्यैक्यसिद्धं तद्गतहेयांशापाये ब्रह्ममात्रमवशिष्यत  
इत्यर्थः ॥ ४ ॥ कामादिवृत्तिमन्मनसा यत्स्वप्रवृत्तिनिमित्तं न मनुरे

\*केनोपनिषद्भाष्ये तु—

( टिप्पणी ) येन ब्रह्मणा मनोऽपि विषयीकृतं नित्यविज्ञानस्वरूपेणेत्ये-  
तत् । सर्वकरणानामविषयं तानि च सर्वव्यापाराणि सविषयाणि नित्यवि-  
ज्ञानस्वरूपावभासकतया येनाऽवभास्यन्त इति श्लोकार्थः । “ क्षेत्रं क्षेत्री  
तथा कृत्स्नं प्रकाशयति ” इति स्मृतेरिति व्याख्यातम् ।



न संकल्पयति मनोनिमित्तस्य मनोवृत्तिजातभासकत्वान्मनना-  
दिसामर्थ्यस्य स्वाप्रवृत्तिनिमित्तचैतन्याधीनत्वाच्च ब्रह्मविदो येन  
स्वनिमित्तभूतेन सवृत्तिकं मनोमतं विषयीकृतमित्याहुः तद्धिम-  
त्यक्तत्वं पराकस्वसापेक्षप्रत्यक्संवापाये तत्तदेव ब्रह्ममात्रं विद्धि अव-  
धारणार्थं स्पष्टयति । नेति यत्स्वाज्ञं स्वज्ञा इदन्त्वेन ग्रहन्त्वे  
नोपासते ब्रह्मविष्णुरुद्रादिकं तद्ब्रह्म न भवतीत्यर्थः ॥ ५६ ॥  
यन्निष्पतियोगिकपरं ब्रह्म स्वाज्ञविकल्पितभूतभौतिकप्रसक्तौ तत्सर्वं  
प्रत्यगात्मा भवति स्वाधेयविश्वप्रसक्तौ तदाधारतया महद्व्यापकं  
प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मेव विश्वस्यायतनं विश्वापवादाधिष्ठानमित्यर्थः ॥ ७ ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥ ८ ॥

अंतः पूर्णो बहिः पूर्णः पूर्णकुंभ इवार्णवे ॥ ९ ॥

अंतः शून्यो बहिः शून्यः शून्यकुंभ इवार्णवे ॥ १० ॥

मा भवग्राह्यभावात्माग्राहकात्मा च मा भव ॥ ११ ॥

भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ १२ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह ॥ १३ ॥

दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज ॥ १४ ॥

चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकं ॥ १५ ॥

द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं महासुते ॥ १६ ॥

( टीका ) यत्सूक्ष्मात्प्रत्यगभिन्नब्रह्मणः सूक्ष्मतरं निर्विशेषब्र-  
ह्ममात्रं नित्यं हे शिष्य तत्त्वमेव तत् प्रत्यक्परयोरेकत्वे अहं ब्रह्मा-  
स्मीति श्रुतेः ॥ ८ ॥ अर्णवस्थपूर्णकुंभवदंवरस्थशून्यकुंभवच्च-  
निर्विशेषतयांतर्बाह्यकलनाशून्यं विभातांतर्बाह्यान्तरालपूर्णरूपेण  
परमात्मावशिष्यत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ मनःकल्पितशरीरादि-  
विषयजातं ग्राह्यं तत्कल्पकमानसवृत्तिजातं ग्राहकं देहत्रयात्मा  
जीवत्रयात्मा च मा भवग्राह्यग्राहकादिनिखिलभावनापन्धवशिष्टं ब्रह्म-



स्वमात्रमिति ज्ञात्वा तन्मात्रपदवीं भजेदित्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥  
 स्वातिरिक्तद्रष्टाजीवः दर्शनं घटादिविषयकज्ञानं दृश्यं घटादि-  
 द्रष्टाहमित्यादिवासनया सह त्रिपुटीं निरक्ष्यापवादं कृत्वा तदप-  
 वादप्रथमाभासं प्रत्यंचमात्मानं पराक्सापेक्षप्रत्यग्भावविरलं केवलं  
 परमात्मानं भज ॥ १३ ॥ १४ ॥ सदा चिद्वरूपेण काशत-  
 इति चिदाकाशं ब्रह्मस्याज्ञवृष्ट्या चिद्धदवभातचित्तोपल-  
 क्षिताविद्यापवादाकाशं परिकल्पितं ततोभूताकाशोपलक्षितपंचभूत-  
 भौतिकाकाशं कल्पितं छात्र्यां चित्ताकाशभूताकाशाभ्यां शून्यता-  
 चित्ततत्कार्यापन्हवसिद्धं चिदाकाशं हे महामुने स्वमात्रमिति विदि-  
 जानीहि इत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥

ध्यानतोहृदयाकाशेचित्तिचिच्चक्रधारया ॥ १७ ॥

मनोमारय निःशंकं त्वां प्रबध्नन्ति नारथः ॥ १८ ॥

भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम् ॥ १९ ॥

भावाभावौ ततस्त्यक्तानिर्विकल्पः स्थिरो भव ॥ २० ॥

त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यान् दत्ते त्यज ॥ २१ ॥

उभे सत्यान् दत्ते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज ॥ २२ ॥

आत्मन्यतीते सर्वस्मात् सर्वरूपेण वा तते ॥ २३ ॥

कोषं धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु ॥ २४ ॥

(टीका) ब्रह्माहमहं ब्रह्मेति ध्यानेन हृदयाकाशे तदवभासिकायां  
 चिति स्वाङ्गविकल्पितमन उपलक्षितलिङ्गशरीरं चिदतिरिक्तं नेति  
 चिच्चक्रधारयानिःशंकं निर्दयं मारय अपन्हवं कुरु ततस्त्वां कामाद्यरयो-  
 नहि प्रबध्नन्ति स्पष्टं न पारयन्तीत्यर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ नानाविधस्त-  
 क्चंदनवानिताभक्ष्यभोज्यादिभोग एव परायणमिति भोगैकवासनां  
 जगज्जीवेशसाक्ष्यादिभेदवासनां च त्यक्त्वा ततस्तदस्तिनास्तीति  
 तन्भावाभावविभ्रमावपित्यक्त्वापन्हवं कृत्वा स्वयं निष्प्रतियोगिक-



निर्विकल्पोभूत्वास्थिरोभवेत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ श्रुतिस्मृतिविहितं  
धर्मं श्रुतिस्मृतिप्रतिषिद्धमधर्मं च चाक्षुषं सत्यं मानसमनृतं चोभे-  
सत्यानृते स्वातिरिक्तं नेति त्यज यद्वा उभे सत्यानृते त्यक्त्वा-  
पन्हवं कृत्वा येन सम्यग्ज्ञानेनापन्हवं करोषि तद्वृत्तिमपि परित्यज्य  
ब्रह्ममात्रं भजेत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ सर्वस्वत्वदं ब्रह्मेति श्रुतिसिद्ध-  
सर्वरूपे तते सर्वव्यापके अथवा सर्वविशेषनेति इति विहाय  
यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्मेति श्रुतिसिद्धे सर्वस्मादतीते सर्वाप-  
न्हवसिद्धे निष्प्रतियोगिकपरमात्मनि कोवातूलाविद्याभागत्रय  
विकल्पितोबंधः कोवातूलाविद्या तूर्यभागविकल्पितमोक्षश्रेत्याक्षे-  
पतोनिर्मुक्तं मननं कुरु स्वातिरिक्तबंधमोक्षकलनानास्तीतिब्रह्म-  
मात्रंभवेत्यर्थः ॥ २३ ॥ २४ ॥

आशायातु निराशात्वमभावं यातु भावना ॥ २५ ॥

अमनस्त्वं मनोयातुतवा संगेन जीवतः ॥ २६ ॥

एकमाद्यंतरहितंचिन्मात्रममलंततं ॥ २७ ॥

स्वादप्यऽतितरां सूक्ष्मंतद्ब्रह्मासिनसंशयः ॥ २८ ॥

रक्षकोविष्णुरित्यादि ब्रह्मास्तुऽष्टेस्तुकारणम् ॥ २९ ॥

संहारैरुद्रहृत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु ॥ ३० ॥

अद्वयत्वं नास्ति किंचिद्वा मत्पक्षापृथिवीतुवा ॥ ३१ ॥

अयातिरिक्तंयद्यद्वातत्तन्नास्तीतिनिश्चिनु ॥ ३२ ॥

अनात्मेतिप्रसंगोवा अनात्मेतिमनोपिवा ॥ ३३ ॥

( टीका ) सर्वत्रासंगतयाजीवतो जीवन्मुक्तस्य तवस्वदृष्ट्या  
कालत्रयेऽप्संभव स्वातिरिक्ताशा निराशात्वं यातु स्वातिरिक्तव  
स्त्वस्तीतिभावना प्रसक्तोचेत्तदासाऽभावपदमपन्हवं वा यातु  
स्वातिरेकेण मनः प्रसक्तौतदमनस्कं यातु आशादिवृत्तिमन्मनसो-  
मायिकत्वेन कारणतुल्यत्वादित्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ भूतादि-



कालत्रयेप्येकरूपेणावर्तनादेकं उत्पत्तिप्रलयाभावादाद्यंतरहितं  
 चिद्रूपणावशेषणाच्चिन्मात्रं परिच्छिन्नमायामलवैरल्यादमलं तत्  
 अशब्दनिर्गुणरूपेण शब्दगुणकत्वादपि अतितरांकेशकोव्यंशैक-  
 भागसूक्ष्मं यन्निर्विशेषैवैतदन्यमवशिष्यते तद्ब्रह्मासीत्यत्रनहि  
 संशयोस्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥ २८ ॥ स्वाज्ञदृष्टि विकल्पितप्रपञ्च  
 सत्त्वे तत्सृष्टिस्थितिसंहारकारणातया ब्रह्मविष्णुरुद्रादयः संत्येव  
 परमार्थदृष्ट्या प्रपञ्चस्य मायिकत्वेन कारणातुल्यत्वात् विष्णुःपालयति  
 ब्रह्मासृजति रुद्रः संहरतीत्यादिकं सर्वमिथ्येति निश्चिन्वित्यर्थः  
 ॥ २९ ॥ निर्विशेष ब्रह्मरूपेण मया परित्यक्तं भक्तोतिरिक्तं वा  
 पृथिव्याद्युपलक्षितभूतभौतिकजतं यद्यर्त्तिकचिदस्तीति मन्यसे त-  
 त्त्वास्तीति निश्चिनु अहमेवेदं सर्वमिति श्रुतेः ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥  
 अनात्मापन्हवसिद्धात्मनि स्वमात्रमिति ज्ञाते तस्य निष्प्रतियो-  
 गिकतया मायारूपानात्मास्तिनास्तीति प्रसंगोवार्त्तापि नयुज्यते  
 कारणरूपेणाऽनात्माभावेऽपि उपलब्धिविषयतोमनोरूपेण तद्वि-  
 कल्पितजगद्रूपेणावा नात्मास्यादितितत्राह ।

अनात्मेतिजगद्वापि नास्त्यनात्मेतिनिश्चिनु ॥३४॥

आदिमध्यावसानेषु दुःखं सवे मिदं यतः ॥३५॥

तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठोभवानघ ॥३६॥

निद्राया लोकवार्त्तायाः शब्दादेरात्मविस्मृतेः ॥३७॥

एवचिन्नावसरंदत्वा चिंतयात्मानमात्मनि ॥३८॥

सर्वव्यापारमुत्सृज्य अहं ब्रह्मेति भावय ॥३९॥

अहं ब्रह्मेति निश्चित्य त्वहं भावं परित्यज ॥४०॥

घटाकाशमहाकाश इवात्मानं परात्मानि ॥४१॥

( टीका ) अनात्मेति अनात्मास्तीतिमननकृन्मनोपि नास्ति-  
 स्वाज्ञानतोजगत् गच्छतीति जगद्वापि नास्तीतिनिश्चिनुमायाना-



स्तिमनोनास्तीति श्रुतेः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यस्मात्स्वातिरिक्ताऽवि-  
द्यापदतत्कार्यजातमादिमध्यावसानेषु दुःखदं भवति हे अनघ  
तस्मात्सर्वपरित्यज्य निर्विशेषब्रह्माहमस्मीति तत्त्वनिष्ठोभवेद्ब्रह्म-  
विद्वारिष्ठोभवेत्यर्थः ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ निर्विशेषब्रह्मज्ञानमहिम्ना  
तदाप्त्यंतरायतया निद्रादिकं सत्यं मत्वा तन्निरसनपूर्वकं स्वात्मतत्त्व-  
माप्नुं यदि मन्यसे सदा नित्यात्मचिंतां द्रावयतीति निद्रा तमोवृत्तिः  
लोकवार्त्ताच्च तमोवृत्तिसर्जनरजोवृत्तिः सर्वानर्थहेतुशब्दादिश्च तमः  
सत्वोपसर्जनरजोवृत्तिः ब्रह्मभावं विना देहभावस्यात्मविस्मृतिः रजः  
सत्वोपसर्जनतमोवृत्तिः निद्राद्यात्मविस्मृत्यनूतानां कचिदप्यवसरं  
न दत्वा स्वात्मानमात्मना अखंडाकारवृत्तिमन्मनसा ब्रह्माहमस्मीति  
चित्तय स्वाज्ञानावधि सदानुसंधानं कुर्वित्यर्थः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥  
हे शिष्य त्वं प्रापंचिकसर्वव्यापारमुत्सृज्य स्वांतर्बाह्यव्यापारा-  
पवादाधिष्ठानं प्रत्यगाभिन्नं ब्रह्मास्मीति भावय । अहं प्रत्यक्  
परविभागैक्यात् सोऽहं ब्रह्मेति निश्चित्य तद्गताहंभावं परित्यज्य ब्रह्म-  
मात्रं भवेत्यर्थः ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशो  
महाकाशे विलीयते यथा घटाकाशो महाकाशमात्रं भवति । तथा  
निरुपाधिकमात्मानं प्रत्यंचं परमात्मानि विलाप्य स्वात्मा परमात्म-  
मात्रमवशिष्यते इत्यखंडभावेन हे मुने सदा तूष्णीं भव तूष्णींभूतो-  
स्मीति वृत्तित्यक्त्वा ब्रह्ममात्रं भवेदित्यर्थः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥  
विलाप्याखंडभावेन तूष्णीं भव सदा मुने ॥ ४१ ॥  
चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च ॥ ४२ ॥  
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति भावय ॥ ४४ ॥  
सत्यचिदूघनमखंडमद्वयं सर्वदृश्यरहितं निरामयम् ॥ ४५ ॥  
यत्पदं विमलमद्वयं शिवं तत्सदाहमिति मौनमाश्रय ॥ ४६ ॥  
जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं जातिनीतिकूलगोत्रदूरगम् ४७



चिद्विवर्तजगतोऽस्यकारणं तत्सदाहमिति मौनमाश्रयः ४२  
 पूर्णमद्वयमखंडचेतनं विश्वभेदकलनादिवर्जितम् ॥ ४३ ॥  
 अद्वितीयपरसंविदात्मकं तत्सदाहमिति मौनमाश्रयः ४४

(टीका) इहामुत्र च चिदेवास्ति चिद्विकल्पितमिदं जगच्चिन्मात्रमेव  
 चिन्मात्रमेव त्वं चाहं चैते च लोकाश्च चिन्मात्रमिति भावय चिन्मात्रमेव  
 चिन्मात्रमिति श्रुतेः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ अनृतजडप्रपंचाधारत्वात्सत्य  
 चिद्वनं जगज्जीवेशादिरूपेण खंडद्वैताभावादखंडमद्वयं घटादिदृश्य-  
 प्रपंचाभावात्सर्वदृश्यरहितं देहत्रयाभावान्निरामयं यत्पदं मुक्तप्राय-  
 मलब्धं द्वैताशिवाभावाद्धिमलमद्वयं शिवं तत्सदाहमिति करण  
 ग्राममौनमाश्रयः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ देहत्रयाभावाज्जनिमृतिमुत्प-  
 दुःखजातिनीतिकुलगोत्रादिकलानातीतं चिदज्ञानविकल्पिताचि-  
 जगत्सत्त्वे यत्कारणात्वेनाभिमतं यद्वस्तुतः कार्यकारणकलनापन्हव-  
 सिद्धं तदेव सदाहमिति मौनमाश्रयः निर्व्यापारो भवेत्यर्थः ॥ ४७ ॥  
 ४८ ॥ सर्वस्यांतर्बहिश्च व्यापकत्वेन पूर्णं द्वैतरूपेण खंडाचेतनाभा-  
 वादद्वयमखंडचेतनं विश्वभेदे सत्यखंडत्वं कुत इत्यत्र विश्वभेदकल-  
 नास्तिनास्तीति विकल्पितवर्जितं अतएव निष्प्रतियोगिको द्वैतपरमा-  
 नंदबोधस्वरूपं यदवशिष्यते तत्सदाहमिति मौनमाश्रयेत्युक्तार्थम्  
 ॥ ४९ ॥ ५० ॥

स्वात्मनोऽन्यतया भातं चराचरमिदं जगत् ॥ ५१ ॥

स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा तदस्मीति विभावय ॥ ५२ ॥

विलाप्य विकृतिं कृत्स्नां संभवव्यत्ययक्रमात् ॥ ५३ ॥

परिशिष्टं च चिन्मात्रं चिदानंदं विचिंतय ॥ ५४ ॥

(टीका) स्वाज्ञदशायां यच्चराचरात्मकमिदं जगत्स्वात्मनो  
 भिन्नतया भातं स्वज्ञदशायां तत्स्वातिरिक्तं नेति स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा  
 यत्सर्वविकारापन्हवसिद्धं तदस्मीति विभावय तद्भावनामपि त्यजे-



त्यर्थः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ आत्मन आकाशसंभूत इत्यादिः संभवक्रमः  
पृथिव्यप्सु प्रलीयत इत्यादि व्यत्ययक्रमः भूतभौतिकं भूतिवैपरीत्ये-  
न तद्विकृतिं कृत्वा प्रविलाप्य प्रकृतिप्राकृतापन्हवतोयत्परिशिष्यते  
चिन्मात्रं साचिदानंदस्वरूपं तत्स्वमात्रमिति चिंतयेत्यर्थः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तत्सदितिसाक्षाद्वैतकोपदेशवाक्यानि चतुःपंचाशत्  
अथसाक्षाद्वैतिकजीवब्रह्मैक्यवाक्यानि  
सयश्चायं पुरुषे ॥ १ ॥

यश्चासावादित्यस एकः ॥ १ ॥

सत्यमात्माब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवाब्रह्मेवनविचिकित्स्यं ॥

( टीका ) आहत्यपंचोत्तरद्विशतं उपदेशमहावाक्यप्रकरणां  
संपूर्णं उपदेशमहावाक्यजातार्थं यथावदजानतां प्रत्यक्परमेदप्रस-  
क्तौ तन्निराकरणायसाक्षाद्वैतिकजीवब्रह्मैक्यवाक्यानि लिख्यन्ते सय-  
श्चेत्यादिना यः सर्वांतरत्वेनप्रसिद्धः सचायं पुरुषे जीववृन्दे प्रत्यक्त्वेन  
प्रतिष्ठितः यश्चासावादित्यआदित्योपलक्षितदेवताकदंबेच परमा-  
त्मतया प्रतिष्ठितः यस्त्वं तत्पदार्थत्वेन जीवेशवृन्दे प्रतिष्ठितः  
सोयमुच्चावचोपाधिभैरव्यादेक एव एकमेवाद्वितीयमिति श्रुतेः ॥ १ ॥

॥ २ ॥ ३ ॥ व्यष्टिप्रपंचप्रातिलोभ्येनांचनात् प्रत्यगात्मा स  
एव समष्टिप्रपंचोपवृंहणाद्ब्रह्मैव भवति ब्रह्मात्मैवेति यत्सत्यं न हि  
संशयोऽस्ति तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मीति श्रुतेः ॥ ४ ॥

त्वं ब्रह्मासि ॥ ५ ॥

अहं ब्रह्मासिमि ॥ ६ ॥

आवयोरंतरं न विद्यते त्वमेवाहमहमेव त्वम् ॥ ७ ॥

गताः कलाः पंचदशप्रतिष्ठादेवाश्च सर्वेप्रतिदेवतासु ॥ ८ ॥

कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परे व्यये सर्वे एकी भवन्ति ॥ ९ ॥

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च ॥ १० ॥



स्वाद्स्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ ११ ॥

चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ॥ १२ ॥

चैतन्यमेकं ब्रह्मांतः प्रज्ञानं ब्रह्ममय्यपि ॥ १३ ॥

( टीका ) हे शिष्य देहजयावभासकस्त्वमेव भास्यतांसापेक्ष  
भासकतापाये निर्विशेषं ब्रह्मासि ॥ ५ ॥ हेस्वामिन् भवत्प्रसादादां  
प्रत्यग्भिनं ब्रह्मास्मीति शिष्यानुभवस्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥ स्वभक्ति-  
साधनोपायतो वैकुण्ठगतभक्तं प्रति भगवानेवमाह त्वमिति यस्त्वं भक्तो-  
ऽसि सोऽहं भगवानहमेवत्वमावयोरंतरं न विद्यते आवयोर्भेदहेतु  
स्वाज्ञानाभावादित्यर्थः ॥ ७ ॥ यस्मिन्निर्विशेषे चिन्मात्रे स्वाज्ञादृष्ट्या-  
स्वाविद्यापादार्भकत्वेन याः प्राणादीनामांतरकलाः पंचदशभेदाः  
स्वस्वकारणरूपप्रतिष्ठागताः प्रतिष्ठा इति द्वितीयावहुवचनं  
श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रिय पंचकवागादिकर्मेन्द्रिय पंचकमन आद्यंतःकारण-  
पंचकभेदभिन्नाः सर्वदेवाश्च दिग्घातादिप्रतिदेवतास्तु आगम्यादि  
कर्माणि विज्ञानमयोजीवः च शब्दाद्विधादयो विराडादयो अन्नादयश्च  
शृण्वते त एते सर्वे स्वप्रतिष्ठामेत्य स्वस्वोपाधितयात्परेऽव्यये एकी  
भवन्ति निर्विशेषब्रह्मभावं भजन्तीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ६ ॥ प्रज्ञानं ब्रह्मेति  
महावाक्यार्थं श्रुतिरेव व्याकरोति येनेति येन चक्षुरादिभ्रूतिनिमित्ते-  
नायं लोकः रूपजातपीक्षते शब्दजातं शृणोति गंधजातमिदं जिघ्रति  
शब्दजातं च व्याकरोति स्वाद्स्वादुरसभेदं विजानातीति यत्तत्प्र-  
ज्ञानमुदीरितम् ॥ १० ॥ ११ ॥ यतो ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रादिदेवेषु मनु-  
ष्याश्वगवादिपिपीलिकांतेषु च मठकठाह्वटशरावाद्यनुगतव्योमैकत-  
वत् ब्रह्मादिपिपीलिकांतोपाध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं ब्रह्मैव यतो मय्यपि  
विद्यमानं प्रज्ञानं ब्रह्मैवेत्यर्थः ॥ १२ ॥ १३ ॥

परिपूर्णः परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि ॥ १४ ॥

बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ १५ ॥



स्वतः पूर्णः परमात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ॥१६॥  
 अस्मीत्यैक्यपरामर्शात्तेन ब्रह्मभवाम्यहम् ॥ १७ ॥  
 एकमेवाद्वितीयं तन्नामरूपाविवर्जितम् ॥ १८ ॥  
 सृष्टेः पुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तद्वितीर्यते ॥ १९ ॥  
 श्रोतुर्देहेंद्रियातीतं वस्तुवन्न त्वंपदेरितम् ॥ २० ॥  
 एकताग्राह्यतेसीतितदैक्यमनुभूयताम् ॥ २१ ॥  
 स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितोमतम् ॥ २२ ॥  
 अहंकारादिदेहांतात्मत्यगात्मेति गीयते ॥ २३ ॥  
 दृश्यमानस्य सार्यस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ॥ २४ ॥  
 ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ २५ ॥

( टीका ) अहंब्रह्मास्मीति श्रुत्यर्थं श्रुतिरेव व्याकरोति परिपूर्णा  
 इति उच्चार्यचोपाधिषु व्योमवत्पूर्णः परमात्मा ब्रह्मविद्याधिकारिणि  
 अस्मिन् स्थूलदेहे तन्नत्यहृदयाकाशगतबुद्ध्युपलक्षितलिङ्गदेहस्य भावा-  
 भावसाक्षितया स्थित्वा सर्वगत्यक्त्वेन स्फुरन्नहमितीर्यते अहं  
 शब्देनोच्यत इत्यर्थः अत्र सार्धेनान्तरनिरपेक्षेणा स्वतः परिपूर्णाः  
 परमात्मा तद्वरूपेणोपबृंहणाद्ब्रह्मशब्देन वर्णितो भवति प्रत्यगभिन्नं  
 ब्रह्मास्मीति प्रत्यक्ब्रह्मणोरैक्यपरामर्शात्तेनानुसंधानेनाहं ब्रह्मभवामि  
 स्वाज्ञानेन साकमब्रह्मत्वस्य निरस्तत्वादित्यर्थः ॥१४॥१५॥१६॥  
 ॥१७॥ तत्त्वमसीति श्रुत्यर्थं श्रुतिरेव प्रकाशयति एकमिति सदेवसो-  
 म्येदमग्रआसीदिति श्रुतिसिद्धसच्छब्दलक्षितमेकमेवाद्वितीयं सजा-  
 तीयविजातीयस्वगतमेदविरलं स्वाज्ञारोपितनामरूपविवर्जितं सत्  
 सृष्टेः पुराधुनाप्रलयानन्तरमपि तादृक्त्वं उक्तविशेषणविशिष्टनि-  
 र्विशेषब्रह्मतत्त्वं तत्पदलक्ष्यमितीर्यते अत्रास्मिन्स्तत्त्वमस्यादिवाक्ये

१ स्थूलसूक्ष्मोपाधिष्वित्यर्थः । २ सामान्यन्तरनिरपेक्षतया ।

३ तत्पदवाच्यरूपेणेत्यर्थः ।



सर्ववेदांतार्थश्रोतुरधिकारिणः देहोद्रियातीतं वस्तु त्वंपदलक्ष्यमिति-  
 रितं तत्त्वं लक्ष्ययोरसीत्येकता एकत्वं ग्राह्यत इतियत्तदैक्यमनुभूयता  
 तत्त्वं पदलक्ष्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मास्मीत्यनुसंधानं कर्तव्यमित्यर्थः  
 ॥१८॥१९ ॥ २० ॥ २१ ॥ अयमात्मा ब्रह्मेति श्रुत्यर्थं श्रुतिरेव  
 विशदयति स्वप्रकाशेति साधनांतरनैरपेक्ष्येण स्वयं प्रकाशतया  
 परोक्षत्वमयमित्युक्तितः श्रुतितः ईरितं अहंकारादिदेहांतप्रपंचात्  
 प्रातिलोम्येनांचतीति प्रत्यगात्मेति गीयते स्वाज्ञदृष्ट्या दृश्यमानस  
 सर्वस्य जगतः स्वज्ञदृष्ट्या तत्त्वं साच्चिदानंदलक्षणं ब्रह्मशब्देनेत्ये  
 तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपतया अवशिष्यत इत्यर्थः ॥२२॥२३॥२४॥२५॥

मायाविद्ये विद्यायैवउपाधीपरजीवयोः ॥ २६ ॥

अखंडंसाच्चिदानंदं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥ २७ ॥

सकारः खेचरीप्रोक्तस्त्वं पदं चेतिनिश्चितम् ॥२८॥

हकारः परमेशस्यात्तत्पदं चेतिनिश्चितम् ॥ २९ ॥

सकारोऽध्यायतेजंतुर्हकारोऽहिभवेद्भुवम् ॥ ३० ॥

आचोरातत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वं पदार्थवान् ॥३१॥

तयोः संयोजनमसीत्यर्थेनत्वाविदोविदुः ॥ ३२ ॥

नमस्त्वमर्थोविज्ञेयोरामस्तत्पदमुच्यते ॥ ३३ ॥

असीत्यर्थेचतुर्थीस्यादेवं मंत्रेषु योजयेत् ॥ ३४ ॥

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलंतैले जलंजले ॥ ३५ ॥

संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥३६॥

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ॥३७॥

तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ३८ ॥

( टीका ) तत्त्वमर्थयोः परजीवयोरुपाधी मायाविद्ये स्वातिरिक्तं  
 नेतीतिविहाय तदपन्हवसिद्धमखंडं साच्चिदानंदं परंब्रह्म विलक्ष्यते  
 ४ वैपरीत्येनेत्यर्थः ।



स्वमात्रमवशिष्यत इत्यर्थः ॥ २६ ॥ २७ ॥ सोऽहं शब्दार्थमाह सकार  
 इति खेचर्या खेचरीयुंजानिति श्रुत्यनुरोधेन खेचरीवीजं सकारः  
 त्वंपदार्थ इति निश्चितः आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतितः हकारोवियद्वीजं  
 तदर्थः परमात्मेति निश्चितः सकारार्थो जंतुर्जीवः स्वगतजीवत्त्वापा-  
 ये हकारलक्ष्यपरमात्माभवेदिति ध्रुवं वास्तवमित्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥  
 ॥ ३० ॥ आद्योरेफस्तत्पदलक्ष्यार्थः अपरोमकाररत्वं पदलक्ष्यार्थः  
 तयोः संयोजनमसिपदार्थः रामशब्देन प्रत्यगभिन्नपरमात्मोच्यत  
 इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ नमः शब्देन त्वं पदलक्ष्यं राम इति त्र्यक्षरं  
 तत्पदलक्ष्यं अयेति चतुर्थी असिपदार्थः एवं सप्तकोटिमहामंत्रेषु प्रत्य-  
 गभिन्नब्रह्मानुसंधानं समानमित्यर्थः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यथा क्षीरा-  
 दिषु क्षीरादियोजनेनैकतांयाति तथा ब्रह्मविन्मुनिर्ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः  
 ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यथा घटे नष्टे स्थिते वा कालत्रयेऽपि तद्गतव्योम व्योमैव  
 भवति तथैवोपाधिसत्त्वासत्त्वाभ्यां ब्रह्मवित्स्वयं ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः  
 नष्टे घटे स्थिते व्योम व्योममात्रं यथाभवेत् उपाधिसत्त्वासत्त्वाभ्यां  
 तथा ब्रह्मैव विद्धर इति स्मृतेः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ आहत्यवाक्यानि त्रि-  
 चत्वारिंशदुत्तरद्विशतम् ॥ १४३ ॥ जीवब्रह्मैक्यप्रकरणविवरणं  
 संपूर्णम् ॥ ६ ॥

ओं तत्सदितिसाङ्गीतिकजीवब्रह्मैक्यवाक्यानिष्ट-  
 त्रिंशत् अथ साङ्गीतिकमननवाक्यानि ।

अहमन्नमहमन्नमहमन्नं ॥ १ ॥

अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः ॥ २ ॥

अहं मनुरभवं सूर्यश्च ॥ ३ ॥

अहमेवेदं सर्वमस्मानि ॥ ४ ॥

यथा फेनतरंगादि समुद्रादुत्थितं पुनः ॥ ५ ॥

१ स्वस्वरूपतया प्रकाश्यत इति भावः ।



समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते ॥ ६ ॥

अनात्मदृष्टेरविवेकनिद्रामहं मम स्वप्नगतिंगतोहम् ॥७॥  
स्वरूपसूर्ये भ्युदिनेस्फुटोक्तैर्गुरोर्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः ॥८॥

प्राणाश्चलंतु तद्धर्मैः कामैर्वाहन्यतां मनः ॥ ९ ॥

आनन्दबुद्धिपूर्णास्य मम दुःखं कथं भवेत् ॥ १० ॥

नमे बंधो नमे मुक्तिर्नमेशास्त्रं नमे गुरुः ॥ ११ ॥

मायाप्रात्रविकासत्वान्प्रायातीतोऽहमद्वयः ॥१२॥

आत्मानमंजसा वेशि काप्यज्ञानं पलायितम् ॥ १३ ॥

कर्तृत्वमपि मे नष्टं कर्तव्यं शशि न क्वचित् ॥ १४ ॥

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौंदर्यजातयः ॥ १५ ॥

स्थूलसूक्ष्मवैगता ह्येते स्थूलान्निन्नस्य मेनहि ॥ १६ ॥

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यकामक्रोधादयोऽखिलाः ॥१७॥

लिङ्गदेहगता ह्येते ह्यलिङ्गस्य न विद्यते ॥ १८ ॥

जडत्वप्रियमोदत्वधर्माः कारणदेहगाः ॥ १९ ॥

( टीका ) ॐ प्रत्यक्षपरैक्यमहावाक्यार्थसंस्कृतब्रह्मविदां

ब्रह्मविद्धरताहेतुजीवन्मुक्त्युपायमननप्रकारं वक्तुं मननमहावाक्या-  
न्युच्यन्ते अहमन्मित्यादिना अद्यत इत्यन्नं अन्नमत्तीत्यन्नाद-  
मम सर्वात्मकेनान्नातृत्वरूपेणाहमेव वर्तते इत्यर्थः ॥ १ ॥ २ ॥ मन्वा-  
दित्यचंद्रतारका अपि मत्तो न भिद्यंत इत्यर्थः ॥ ३ ॥ यतः प्रत्यग्वि-  
कल्पितमिदं सर्वं भूतभौतिकजातं अतोऽहमेवेदं सर्वमस्मानि भवा-  
मीत्यर्थः ॥ ४ ॥ यथासमुद्रात् फेनतरंगादिरुत्थितस्तत्रैव स्थिताः  
कचित्पुनस्तत्रैव लिप्यते तथा मदज्ञानविजृम्भितं जगन्मय्येवानुवि-  
लिप्यतेऽतो मदतिरिक्तं किंचिदपि नास्तीत्यर्थः ॥ ५ ॥ ६ ॥ देहा-  
दावात्मभारूरुदस्यानात्मदृष्टेः पुरात्मानात्माविवेकनिद्रायादुर्भूता  
तामहमवष्टभ्य तत्र देहदारादावहं ममेति स्वप्नगतिं गतवानस्मि इदानीं



श्रीगुरोः स्फुटोक्तेस्तत्त्वमस्यहं ब्रह्मास्मीति महावाक्यपदैः स्वरूपसूर्ये  
 निर्विशेषतयाभ्युदिते सति तदा ब्रह्माहमस्मीति प्रबुद्धोस्मीत्यर्थः ॥७॥  
 ॥ ८ ॥ तेषां दशभेदभाषणानां प्राणानां धर्मैर्निःश्वासोच्छ्वासादि-  
 शोभातैः प्राणादिधनंजयांतप्राणाश्चलंतु मनश्चाद्यंतःकरणां तु काम-  
 संकल्पादिवृत्तिभिर्वाहन्यतां स्वानंदबुद्धिपूर्णास्य मम देहत्रयवित्त-  
 क्षणात्वेन तत्प्रभवदुःखं कथं भवेदित्यर्थः ॥ ९ ॥ १० ॥ मम नित्य-  
 मुक्तत्वेन बंधसापेक्षमुक्तिर्नास्ति तत्साधनीभूतगुरुशस्त्रादिकं न मे-  
 ऽस्ति तेषां बंधादीनां मायामात्रविकासत्वाद्यतोहमद्वयोऽतो माया  
 तीतोस्मीत्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्रत्यंचमात्मानं ब्रह्माहमस्मीत्यंजसा वेद्मि  
 पुरानुभूतमपि स्वाज्ञानं क पलायितं पुरानुभूतकर्तृत्वमपि मे नष्टं पुरा  
 मम कर्तव्यजातं ब्रह्मासीत् इदानीं कचिदपि कर्तव्यं न विद्यत इत्य-  
 र्थः ॥ १३ ॥ १४ ॥ ब्राह्मण्यादिशौद्रांतनानाविधकुलगोत्रनामसौंद-  
 र्यजातिविकारा जायतेऽस्तीत्यादिषड्भावविकाराश्च स्थूलदेहगता  
 भवेयुः स्थूलाद्भिन्नस्य मे भवेते धर्मा नहि विद्यंत इत्यर्थः ॥ १५ ॥ १६ ॥  
 प्राणैर्द्रियांतःकरणागोचरक्षुत्पिपासान्ध्यवार्धिर्यकामक्रोधमदमात्सर्या-  
 द्यखिलगुणा लिंगदेहगता भवंति एतेक्षुधादिगुणा ह्यलिंगस्य  
 मम न विद्यंत इत्यर्थः ॥ १७ ॥ १८ ॥ तूलांतः करणाविद्या  
 बीजभागप्रभवजडत्वभ्रियमोदप्रमोदत्वधर्माः कारणादेह गता भवंति  
 नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणोभवेते जडत्वादयोधर्मा न हि  
 संतीत्यर्थः ॥ १९ ॥  
 न संति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः ॥ २० ॥  
 चिद्रूपत्वान्नमे जाड्यं सत्यत्वान्नामृतं मम ॥ २१ ॥  
 आजन्दत्वान्नमे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत् ॥ २२ ॥  
 नाहं देहोजन्ममृत्युं कृतोमे

१ अन्तःकरणवृत्ति तूलाविद्यारूपबीजभागप्रभूता जाड्यत्वादयः ।



नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतोमे ॥ २३ ॥

नाहं चेतः शोकमोहौ कुतोमे

नाहं कर्त्ता बन्धमोक्षौ कुतोमे ॥ २४ ॥

आनन्दमन्तर्निजमाश्रयन्त-

माशापिशाचीमवमानयन्तम् ॥ २५ ॥

आलोकयन्तं जगद्दिग्जाल-

मापत्कथं मां प्रविशेदसंगम् ॥ २६ ॥

देवार्चनस्नानशौचभिच्चादौ वर्त्ततां वपुः ॥ २७ ॥

तारं जपतु वाक्तृदृष्टत्वाग्नायमस्तकम् ॥ २८ ॥

विष्णुं ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् ॥ २९ ॥

साक्ष्यहं किञ्चिदप्यन्न न कुर्वे नापि कारये ॥ ३० ॥

ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं द्रष्टव्यमद्भुतम् ॥ ३१ ॥

विश्वांतोस्मि चिरं श्रान्तश्चिन्मात्राज्ञास्ति किञ्चन ॥ ३२ ॥

नभ्रूतं नभविष्यं च चिन्तयामि कदाचन ॥ ३३ ॥

नस्तौमि नच निंदामि ह्यात्मनोऽन्यं नहि क्वचित् ॥ ३४ ॥

अलेपकोहमजरोनीरागः शान्तवासनः ॥ ३५ ॥

स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ॥ ३६ ॥

नसन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्ष्णः ॥ ३७ ॥

किं करोमि क्वगच्छामि किंगृह्णामि त्यजामि किं ॥ ३८ ॥

यन्मया पुरितं विश्वं सद्वाकल्पाद्युना यथा ॥ ३९ ॥

( टीका ) ॥ २० ॥ मम चित्सदानन्दरूपत्वाज्जडानृतदुःखं जातं मे न युज्यत इत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ नाहं स्थूलदेहः मे मम जन्मादिषडक्षविकाराः कुतः, नाहं प्राणोभवामि कुतः मे क्षुत्पिपासे

१ चिद्रूपत्वात् सद्व्यपत्वात् आनन्दरूपत्वादित्यर्थः ।



भवेतां, नाहं चेतस्तदाश्रयशोकमोहौ मे कुतः, नाहं कर्त्ता भोक्ता वा  
 भवामि तन्निर्वर्त्य बन्धमोक्षो कुतोमे भवेतामित्यर्थः ॥२३॥२४॥  
 स्वांतर्हृदये निजानन्दस्वमात्रमित्याश्रयंतमिदं मे स्यादिदं मे  
 स्यादित्युत्थितामाशापिचीं स्वातिरिक्तं नेत्यवमानयंत इदं परिहृ-  
 श्यमानं जगदिन्द्रजालबन्धिष्येत्यालोकयन्तं इत्थं ब्रह्मभावेन वर्त्तमानं  
 मां सर्वत्रासंगमापत्परंपरा कथं प्रविशेत् कदापि न स्पृशेदित्यर्थः ॥  
 ॥ २५ ॥ २६ ॥ मद्गुणः शरीरं प्राचीनवासनया स्नानशौच-  
 भिक्षादिकर्मणि प्रवर्ततां मम वाक्तु षोडशावयवब्रह्मप्रणवं जपतु  
 तद्ब्रह्मेदमस्तकं वा पठतु मायकी बुद्धिः सर्वव्यापकतया विष्णुं  
 ध्यायतु यद्वा स्वयं ब्रह्मानन्दसागरे विरूपविलयं भजतु त्वया  
 किंकृतमित्यत्र स्वातिरिक्तसाक्ष्यैस्तद्भावे तत्साक्ष्यहं स्वयं न किंचि-  
 दत्र कुर्वे परैर्वा किंचिदपि न कारये स्वातिरेकेण कर्तुं कारयितुं  
 न किंचिदस्मीत्यर्थः ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ यत्स्वमा-  
 त्रतया ज्ञातव्यं निर्विशेषं ब्रह्म तदधुना ज्ञातं, अपरोक्षतया यद्ब्रह्मण्यं  
 तदद्भुतमहमस्मीति दृष्टं स्वाज्ञदशायां स्वातिरिक्तास्तित्वाधिया चिरं  
 श्रान्तोस्मि इदानीं तु चिन्मात्राच्चास्तिकिंचनेति विश्रान्तोस्मि  
 चिन्मात्रमैव चिन्मात्रमित्यादिश्रुतेः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ब्रह्माति-  
 रेकेण भूतं भविष्यच्च शब्दाद्वर्त्तमानमपि नहि कदाचन चिंतयामि  
 ॥ ३३ ॥ नच कंचन स्तौमि ननिंदामि नहि क्वचिदपि स्वात्मनो-  
 न्यद्ध्यते सर्वमात्ममयं जगदिति श्रुतेः ॥ ३४ ॥ स्वातिरिक्तप्रपं-  
 चसत्वे तत्प्रत्यग्रूपेणालेपकोहं स्थूलदेहविलक्षत्वादजरोऽस्मि सर्वा-  
 नर्थहेतुर्लिंगशरीराभावाच्चीरागः शांतवासनोब्रह्मैव भवामीत्यर्थः ॥  
 ॥ ३५ ॥ स्वमात्रावस्थानलक्षणापूर्णाब्रह्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरा-

१ आनन्दांशमेव स्वस्वरूपमित्याकलयन्तम् । २ स्वाविषयकत्वस्वाति-  
 रिक्ता विषयकत्वेतद्बुभयसम्बन्धेन आनन्दसागरविशिष्टा बुद्धिर्मवत्वित्यर्थः ।



दयः साक्षीच माया तत्कार्याणि च न संति तैश्चैव्याहं विलक्षणः  
 सर्वस्मादन्योविलक्षण इति श्रुतेः ॥ ३१ ॥ ३७ ॥ यथा महाकल्पा-  
 बुना पृथिवी पूरिता तथा यन्मया विश्वोपलक्षिताऽविद्याप-  
 तत्कार्यजातं पूरितं व्याप्तं कवलितमित्यर्थः एवं स्थिते कर्तव्यका-  
 र्याभावात् किंकरोमि गंतव्यप्रदेशाभावात् क्व गच्छामि विषयसामा-  
 न्याभावात् किंकृहामि किंवा त्यजामि सर्वस्य ब्रह्ममात्रत्वात् नास्त्य-  
 नात्मेति निश्चिन्विति श्रुतेः ॥ ३८ ॥ २६ ॥ आहत्यवाक्यानि ब्रह्म-  
 शीत्युत्तरद्विशतं ॥ २८२ ॥ संपूर्णं ॥

ॐ तत्सदितिसार्द्धांतिकमननवाक्यान्त्येकोनचत्वारिंशत्  
 अथ सार्द्धांतिकजीवन्मुक्तिवाक्यानि स तत्र पर्ये-  
 ति जज्ञवक्त्रीडनममाणस्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा  
 वयस्यैर्वा नोपजनं स्मरन्निदं शरीरं ॥ १ ॥

स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवंविजानन्नात्म-  
 रतिरात्मक्रीड आत्मभिश्चुन आत्मानंदः सस्वरा-  
 भवति ॥ १ ॥

( टीका ) मननमहावाक्यसंस्कृतचित्तानां चतुर्विधजीवन्मुक्ति-  
 प्रकटनाय सार्द्धांतिकजीवन्मुक्तिवाक्यानि लिख्यन्ते स तत्रेत्यादिन  
 य एष श्रवणमननतोब्रह्मभावं गतः सोऽयं ब्रह्मविद्वरीयान्त-  
 स्वे मंहिम्नि विकल्पितसर्वाऽपवादाधारदृष्ट्या पर्येति परि समंताद्वर्त्त-  
 परदृष्ट्या यदृच्छया प्राप्तफलं जज्ञत् भक्षयन्सर्वत्रात्मात्मीयाभि-  
 मतिवैरल्येन स्त्रीभिर्वाक्रीडन् यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा वयस्यैः सखिजनैर्वा  
 रममाण इव भाति परारोपितस्त्रीपुरुषोपगे मे जननमुत्पादयतीत्यु-  
 पजनं शरीराभासमात्मात्मीयाभिमानास्पदतयाऽस्तिनास्तीति  
 कदापि स्मरेत् ॥ १ ॥ स वा एष ब्रह्मविद्वरीयान् बौद्धा-

१ प्रपञ्चाधिष्ठानरूपेणेत्यर्थः ।



दिसेव्यजडादिभूतिचतुष्टयेष्वात्मावरणं पश्यन् भेदप्रतीतिं मन्वानः  
अवास्तवं विजानन् सन्निविशेषात्मन्येव रतिः रमणं यस्य  
सोऽयमात्मरतिः आत्मन्येव क्रीडा विनोदो यस्य सोऽयमा-  
त्माक्रीडः आत्मैव मिथुनं यस्य सोऽयमात्ममिथुनः बाह्यादारादिरतिः  
अंधा बधिरा मुग्धाः क्लीबा मूका इति क्रीडावैरल्यादात्ममात्रतया  
सर्वत्र नंदतीत्यात्मानंदः स विद्वानेवं रूपेण स्वयमेव राजत इति  
स्वराद् भवति ॥ २ ॥

ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणा-  
याश्च ससाधनेभ्योऽव्युत्थाय निरागारा निष्परिग्रहा  
अशिखा अयज्ञोपवीता अंधा बधिरा मुग्धाः क्लीबा  
मूका उन्मत्ता इव परिवर्त्तमानाः क्षांता दांता उपरता-  
स्तितिचवः समाहिता आत्मरतय आत्मक्रीडा आत्म-  
मिथुना आत्मानंदाः प्रणवमेव परं ब्रह्मात्मप्रकाशं  
शून्यं जानंतस्तत्रैव परिसमाप्ताः ॥ ३ ॥

( टीका ) ये प्रजापतिशिष्यास्तेदेवाः पुत्रकामेष्टिवाणिज्य-  
स्वाश्रमोक्ताचरणलक्षणेभ्यः ससाधनेभ्यः पुत्रवित्तलोकेषणा-  
भ्योऽव्युत्थाय ससाधनेषणात्रयसंन्यासं कृत्वा अनिकेतस्थिरमतयो-  
निरागाराः प्राणधारणमात्रेतरपरिग्रहशून्या निष्परिग्रहाः केश-  
शिखारहिता अशिखाः कार्पासयज्ञोपवीतरहिता अयज्ञोपवीताः  
ब्रह्मातिरिक्तरूपाग्रहणादंधाः तथा शब्दाग्रहणाद्बधिराः मौढ्यसौ-  
न्दर्यवैरल्यान्मुग्धाः सद्योजातकन्यायुवतिजरठासु विकाररहिताः  
क्लीबाः लौकिकवार्ताविरला मूका- उन्मत्ता इव लक्ष्यैकतानचित-  
तया परिवर्त्तमाना निगृहीतांतर्बाह्येन्द्रियाः शांता दांताः निगृहीत-

१ अनियतस्थितयश्च ते स्थिरमतयः । २ ब्रह्मातिरिक्तशब्दाग्रहणात् ।



स्वातन्त्र्यादिव्यापारा उपरताः शीतोष्णादिद्रुं द्रुं साहिष्णुवास्तितिसत्ता-  
लक्ष्यैकतानमनसः समाहिताः बाह्यदारादिक्रीडामिथुनजफलकान-  
दवैरल्यादात्मक्रीडाः आत्ममिथुना आत्मानंदाः व्याख्यात-  
वैराज्यादिपंचदशमात्रातत्परिणता जाग्रज्जाग्रदाद्यविकल्पानुज्ञैरसांत-  
कलनाप्रलयाधिकरणप्रणवमेव तुर्यतुर्याभिधानपरं ब्रह्मात्मप्रकाशं  
ब्रह्ममात्रं तदतिरिक्तं शुभ्रं जानंतः सतस्तत्रैव तुर्यतुरीयेतन्मात्रा-  
वशेषतया परिसमाप्तास्तद्भावमापन्ना इत्यर्थः ॥ ३ ॥

कुचेलाऽसहायएकाकी समाधिस्थ आत्मकाम आत्म-  
कामो निष्कामो जीर्णकामो हस्तिनि सिंहे दंशे मशरे  
नकुले सर्पराक्षसगन्धर्वेषु मृत्योरूपाणि विदित्वा न पि-  
भेति कुतश्चनेति ॥ ४ ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य निर्ममो  
निरहंकारोभूत्वा ब्रह्मिष्ठं शरणमुपगम्य तत्त्वमाप्तिं सर्व-  
खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेत्यादिमहावाक्या-  
र्थानुभवज्ञानाद्ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पक-  
समाधिना स्वतंत्रोयतिश्चरति स सन्यासी स मुक्तः  
स पूज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः स ब्राह्मण-  
इति ॥ ५ ॥

( टीका ) ब्रह्मवित्पदमारूढः परित्राद् जीर्णकौपीनकंथाधा-  
रणात्कुचेलः स्वदेहातिरिक्तसहायाभावादसहायः अतएवैकाकी वि-  
विधविज्ञेयप्राप्तिसमाधौ स्थितत्वात्समाधिस्थः स्वात्ममात्रविशेषणं  
कामयत इत्यात्मकामः स्वानाप्तकामनाभावदासकामः इदं मे स्यादिति  
कामो यस्मान्निर्गतः सोऽयं निष्कामः स्वात्ममात्रज्ञानजठराग्निना  
जीर्णः कामोयस्य स जीर्णकामः कुचेलाद्यभिमानत्यागपूर्वकं  
हस्तिसिंहदंशमशकनकुलसर्पराक्षसगन्धर्वादिषु स्वाज्ञानां भयहेतुष्वपि  
भीहेतुस्वातिरिक्तदृष्टिं स्वमात्रज्ञानखड्गेन मारयतीति मृत्युस्तस्य मृत्यो-



जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं षड्विंशकपरमात्माहमिति निश्चयाज्जीवन्मुक्तोभवति ॥६॥  
तुरीयमक्षरमिति ज्ञात्वा जागरिते सुषुप्त्यवस्थापन्न इव यद्यच्छ्रुतं यद्यद्दृष्टं तत्सर्वमविज्ञातमिव योवसेरास्य स्वप्रावस्थायाऽपि तादृगवस्था भवति स जीवन् मुक्तो भवति ॥७॥ सकृद्विधातसदानंदानुभवैकगोचरा ब्रह्मवित् विद्वांश्चक्षुरादिबाह्यप्रपञ्चोपरतः सर्वं जगदात्मत्वेन पश्यन्नात्मेति भावयन् कृतकृत्योभवति ॥ ८ ॥  
निर्विशेषचिदातोः स्वरूपाणि गजाश्वादीनीतिज्ञान महिम्ना सर्वात्मभावनावान्मुनिर्न विभेति कुतश्चन भीहेतुद्वैतदृष्ट्यभावादित्यर्थः सर्वात्मभावनाजुष्टयोगिर्न सर्वजंतवः स्वात्मत्वेनैव पश्यन्ति न द्विषन्त्यामरूपत इति स्मृतेः ॥ ४ ॥ परिब्राद् ब्रह्मवित् श्रुतिस्मृतिविहितप्रतिषिद्धरूपान् करणग्रामनिर्वर्त्तनीयान् सर्वधर्मान् स्वातिरिक्तधिया परित्यज्य दंडकमंडलवादावपि ममेदमित्यभिमानविरलो निर्ममः देहेन्द्रियादौ निरहंकारोभूत्वा ब्रह्मप्रापकतया ब्रह्मिष्ठं स्वाचार्यं शरणा मुपगम्य तन्मुखतस्तत्त्वमसीति परिदृश्यमानं सर्वं ब्रह्मैव खल्विति इह अनानारूपे निर्विशेषे ब्रह्मणि किंचन किंचिदपि नानानास्तीति महावाक्यार्थानुभवज्ञानात् स्वात्मानं ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पकसमाधिना विकल्पसामान्यापन्धवसिद्धनिर्विकल्पके ब्रह्मणि समाहितकरणग्रामतया स्वतन्त्रः स्वच्छंदोयतिश्चरति स स्वातिरिक्तसर्वसन्न्यासी स स्वातिरिक्तकलनामुक्तः मुमुक्षुभिः स पूज्यः स एवास्पर्शयोगी स परमहंसः परिव्राजकः स एव मुख्योवधृतः स ब्राह्मणो ब्रह्मविद्वरिष्ठो भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ पञ्चविंशतित्वात्मकोजीवः वियदादिपञ्चकं प्राणादिपञ्चकं ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं अन्तःकरणचतुष्टयं चेति स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्य-



ज्य चतुर्विंशतितत्त्वापवादाधारतया षड्विंशकपरमात्माहमिति निश्च-  
याज्जीवन्मुक्तोभवति ॥ ६ ॥ अवस्थात्रयापवादाधिकरणां तुरीये  
तदवस्थान्नयवन्नक्षरतीत्यक्षरमिति ज्ञात्वा अक्षरावमतेः पुराजौ-  
गरिते यद्यच्छ्रुतं शब्दजातं यद्यददृष्टं रूपजातं तत्सर्वं सुषुप्त्यवस्था-  
पन्न इव अविज्ञातमज्ञातमिव योवसेत्तस्य ब्रह्मविदः स्वप्नावस्थायाम-  
पि यादृक् जाग्रत्स्वापः तादृक्स्वातिरिक्तविषयशून्यावस्थायामपि  
भवति येनैवमनुभूयते स जीवन्मुक्तोयोगीति ॥ ७ ॥ सदाद्या-  
वृत्तित्रेयापन्हवतः सकृदेव विभातीति सकृद्विभातः एतं  
निरावृत्ततया सदास्वानन्दानुभवैकगोचरः परमात्मैव ब्रह्मवित्  
विद्वान्परमात्मभावमापन्नः नक्षुरादिकरणनिर्वर्त्य बाह्यान्तः प्रपञ्चो-  
परतोभूत्वा स्वाज्ञदृष्टिविकल्पितं सर्वं जगत्कारणातिरिक्तं कार्यं  
नेतिज्ञानादात्मत्वेन पश्यन् सर्वमात्ममात्रमिति भावयन् कृतकृत्यो-  
जीवन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

निर्द्वन्द्वः सदाचंचलगात्रः परमशान्तिं स्वीकृत्य  
नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेत्यखण्डानन्दः पूर्णः कृतार्थः  
परिपूर्णपरमाकाशमग्नमनाः प्राप्तोन्मन्यवस्थः सन्न्यस्त-  
सर्वेन्द्रियवर्गो अनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपक्वकैवल्यफलो-  
खण्डानन्दनिरस्तसर्वक्लेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति कृत-  
कृत्योभवति ॥ ९ ॥

ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवानुसंधानेन या  
कृतकृत्योभवति सपरमहंसपरिव्राट् ॥ १० ॥

( टीका ) सो यं ब्रह्मविद्धरः शीतोष्णसुखदुःखाद्यभावानि-

- १ जाग्रतावस्थाप्रयवत् । २ अक्षरावमानात् । ३ जाग्रदवस्थायाम् ।  
४ अत्र अवस्थेदितिसमीचीनः पाठः, निश्चिनुयादित्यर्थः, । ५ सदेवासी-  
दसदेवासीनोसदासीदितित्रयम् । ६ आवरणशून्यतया ।



ईदृः सदानिर्विकल्पसमाधिपारवश्यादचंचलगात्रः स्वातिरिक्तांतः  
 करणाभावात् परमशान्तिं स्वीकृत्य शान्तप्रपञ्चोभूत्वा अनित्याशुद्धा-  
 नात्मवैरल्यान्नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेति दृढानुभवाभिप्पति-  
 योगिकाखंडानंदः अपूर्णप्रपञ्चसत्त्वे पूर्णः स्वकर्तव्यार्थः सर्वत्र  
 परिपूर्णपरमाकाशे यस्य मनोमग्नं समाप्तं स तथोक्तः सदा निर्वि-  
 कल्पसमाधिरूपायन्मुन्मन्यवस्था येन प्राप्ता स तथोक्तः सर्वेन्द्रियवर्गं  
 स्वातिरिक्तं नेति येन सन्न्यस्तः स सन्न्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गः अनंतः  
 कोटिजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपरिपकतः संजाततत्त्वज्ञानफलकैवल्यं येना-  
 सादितं स तथोक्तः निष्प्रतियोगिकाखंडानंदानुभवेन स्वातिरिक्ता-  
 स्तित्वप्रभवसर्वक्लेशकश्मलं येन निरस्तम् समुनिर्ब्रह्माहमस्मीति  
 कृतकृत्योजीवन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥ वैराज्यादिपश्यंत्यंतपञ्चदशमा-  
 त्रापरिणतजाग्रज्जाग्रदितुर्यस्वापांततद्व्यष्ट्यारोपापवादाधारविश्व-  
 विश्वादितुर्यप्रायाज्ञाततत्त्वमष्ट्यासेवापवादाधारविराद्विराजादितु-  
 र्यविजांततदुभयैक्यारोपापवादाधारोच्चाद्यविकल्पानुशौकरसांतकल-  
 नापन्धवसिद्धतुर्यातुर्यगोचरब्रह्मप्रणवानुसंधानेन अनवरतं निर्विशेष-  
 ब्रह्माहमस्मीति तत्त्वज्ञानमहिम्ना यः कृतकृत्योभवति स परमहंस-  
 परिब्राह्मजीवन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

भावाभावकलाविनिर्मुक्तः सर्वसंशयध्वस्तः

पूर्णाहंभावः कृतकृत्योभवति ॥ ११ ॥

प्राणोच्छेषसर्वभृतैर्विभाति विजानन्विद्वान्

भवतेनातिवादी ॥ १२ ॥

आत्मक्रीडआत्मरतिः क्रियावानेष

ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ १३ ॥

१ अनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपरिपाकात्कैवल्यज्ञानरूपं फलं यस्य स  
 तथोक्तः ।



निमिषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना ॥ १४ ॥

यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः ॥ १५ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः ॥ १६ ॥

सर्वद्वैर्विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ १७ ॥

( टीका ) निर्विशेषब्रह्मज्ञानयोगी ज्ञानेन्द्रियग्राह्यशब्दादिविषयपञ्चकरूपिणी भावकला अंतःकरणावृत्तितिरभावकला ताभ्यां विनिर्मुक्तः स्वातिरिक्तदेहादिरहं तद्विलक्षणो जीवोवा तत्सम-  
प्यारोपाधारेश्वरोवा तदपवादाधारपरमात्मावेत्यादिसर्वसंशयध्वस्ता  
निर्मुक्तसर्वसंशय इत्यर्थः पूर्णब्रह्मभावभाषनत्वादहमेवेदं सर्वमिति  
पूर्णहिंभावारूढः कृतकृत्यो जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ प्राणस्य  
प्राण इति श्रुतिनिर्दिष्टद्वितीयप्राणशब्दलाक्षितः परमात्मैव प्राणो ह्ये-  
षमकृतः परमात्मा ब्रह्मादिस्तंवांतसर्वभूतैः इत्थंभूतलक्षणो तृतीय  
तद्भूतप्रत्यगभिन्नब्रह्मरूपेण विभाति वस्तुतश्चिन्मात्ररूपत्वात् यो  
यं विद्वान् यस्तमात्मानमयमहमस्मीति विजानन्नातिवादी भवति  
भवति अतीत्यसर्वान्वदितुं शीलमस्येत्यतिवादी अपरब्रह्मविद्वान्  
तद्विपरीतः परब्रह्मविद्वान्स्तु स्वातिरिक्तवादिवैरल्यात्कानतीत्यवदेत्  
अतोऽयं नातिवादी तूष्णींभूतइत्यर्थः तथाऽचेत् क्रीडारत्यादिकं  
कुत इत्यत आह आत्मेति दारादिनैरपेक्षेण स्वात्मन्येव क्रीडा-  
रतिध्यानादिक्रिया यस्य सोऽयमात्मक्रीडः आत्मरतिक्रियावानेष  
विद्वान् ब्रह्मविदां वरिष्ठो जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥ १३ ॥  
शुकादिब्रह्मर्षयः सनकादिनित्यमुक्ता ब्रह्मादिदेवाश्च निमिषं निमिषार्धं  
वा ब्रह्ममयीं ब्रह्ममात्रवृत्तिं विना यथा न तिष्ठन्ति तथा ब्रह्मवि-  
द्वरीयांसो जीवन्मुक्तास्तिष्ठन्तीत्यर्थः ॥ १४ ॥ १५ ॥ यो ध्यात्म-  
शास्त्रसिद्धांतरतिः ब्रह्मवित् सिद्धाच्चासने समासीनः स्वापेक्षणीय-  
विषयाभावान्निरपेक्षनिर्गतसंकल्पजालो निराशिषः शीतोष्णादिषु



स्वादिसर्वद्रव्यैर्विनिर्मुक्तो विद्वान् सो अयं ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ब्रह्म-  
भावेनैव तिष्ठतीत्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥

कपालं दृक्षन्मूलानि कुचेखान्यसहायता ॥ १८ ॥

समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ १९ ॥

स्वप्नेऽपि यो हि युक्तः स्याज्जाग्रताव विक्षेपतः ॥ २० ॥

ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ २१ ॥

निर्मानश्चानहंकारो निर्द्वन्द्वश्चिन्नसंशयः ॥ २२ ॥

आत्मक्रीड आत्मरतिर आत्मवान् समदर्शनः ॥ २३ ॥

स्मृत्वा स्पृष्ट्वा च श्रुत्वा च दृष्ट्वा ज्ञात्वा शुभाशुभम् २४

न हृष्यति ग्लायति यः स शांत इति कथ्यते ॥ २५ ॥

अप्राप्तं हि परित्यज्य संप्राप्ते समतांगतः ॥ २६ ॥

( टीका ) निर्विशेषब्रह्माप्त्युपायतया परित्राडभावमापन्नस्य  
मुनेः किलक्षणमित्यत्र कपालं जलपात्रं स्वाश्रमोचितदंडधारणं च  
निवासाय दृक्षन्मूलानि शीतनिवारणाय काषायधातुरंजितकुचे-  
लानि कंथाकौपीनादीनि संगमिया अतहायता सर्वत्र नामरूपविष-  
मज्जासच्चिदानंदब्रह्मभावनया समताचैवेतज्जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्  
॥ १८ ॥ १९ ॥ यथा जाग्रदवस्थायां निर्विशेषं ब्रह्माहमिति  
समाहितचित्तो भवति तथा यो हि स्वप्ने युक्तः स्यात् सोऽप्यमीदृक्चेष्टो  
मुनिर्ब्रह्माहमस्मीति जाग्रत्स्वप्नयोर्मननशीलः ब्रह्मवादिनां श्रेष्ठो-  
वरिष्ठश्च भवतीत्यर्थः ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मविद्वरो योऽपि माना-  
वमानराहित्या निर्मानश्च देहादावहंभाववैरल्याभिरहंकारः शीतो-  
ष्णादिद्वन्द्वजातीतत्वाच्चिद्वन्द्वः अहंब्रह्मैवेत्यवधारणाच्चिन्नसंशयः  
स्वातिरिक्तवगितादृशावादात्मक्रीडः आत्मरतिः प्रत्यगात्माभिन्न-  
परमात्माहमस्मीत्यात्मवान् सर्वत्र समदर्शनो जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः  
॥ २२ ॥ २३ ॥ श्रेयोरूपं शुभं अश्रेयोरूपं अशुभं च स्वातिरिक्तं



नेतिस्मृत्वा ब्रह्मैवेदमिति स्पृष्ट्वा शृहीत्वा प्रारब्धाभासं भुक्त्वा  
 आगमापायीति दृष्ट्वा शुभाशुभे मिथ्येति ज्ञात्वा शुभप्राप्तौ नह-  
 ष्यति अशुभप्राप्तौ नग्लायति न शोचति एवं योवर्त्तते सशांत  
 इतिकथ्यते उच्यते इत्यर्थः ॥ २४ ॥ २५ ॥ कालत्रयेऽपि पदप्राप्तं  
 तदाप्तव्यमितीच्छां परित्यज्य विधिवशात् संप्राप्ते वस्तुनि एतदेवा-  
 लमिति समतां गतः ॥ २६ ॥

अदृष्टखेदाखेदोयः संतुष्ट इति कथ्यते ॥ २७ ॥

नाकृते नकृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः ॥ २८ ॥

निर्मथन इवांभोधिः स तिष्ठति यथास्थितः ॥ २९ ॥

सम्प्रज्ञानावबोधेन नित्यमेकसमाधिना ॥ ३० ॥

सांख्यमेवावबुद्धाये ते सांख्यायोगिनः स्मृताः ॥ ३१ ॥

प्राणायामनिलसंशांतौ युक्त्या ये पदभागताः ॥ ३२ ॥

अनामयमनाद्यंतं तेस्मृतायोगयोगिनः ॥ ३३ ॥

सुखदुःखदशाधीरं सास्यान्नप्रोद्धरन्ति यम् ॥ ३४ ॥

निश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य स्मृतं विदुः ॥ ३५ ॥

( टीका ) स्वेष्टप्राप्तिप्राप्त्योयोऽदृष्टखेदाखेदोभवति सजीव-

न्मुक्तः संतुष्ट इति कथ्यते ॥ २७ ॥ ब्रह्मविदः अकृतेन प्रति-

षिद्धकर्माचरणेन कृतेन विहितकर्माचरणेन चार्थः पुरुषार्थो न

विद्यते ब्रह्मवित्पदाप्तेः पुरैव कर्मसामान्यस्य सन्यस्तत्वात् त्रात्या-

श्रमादितुरीयाश्रमान्तगोचरश्रुतिस्मृतिभिः कर्मोपासनाज्ञानकाण्ड-

गोचरश्रुतिभिः परस्परविरुद्धार्थाभिधायिनीभिश्चार्थः प्रयोजनं न

विद्यते अशीत्यधिकशतोत्तरसहस्रशाखाभिशिडतन्मृगादिचतुर्वेदानां

मन्वाद्यष्टादशस्मृतीनामितिहासपुराणानां चोपायोपेयभेदेन निर्धि-

शेषब्रह्मणः पर्यवसानत्वाद्ब्रह्मविद्धरीयान्निर्मथन इवांभोधिर्वाताच-

लितसुधासागर इवाकृतनिषेधाविधिपरश्रुतिस्मृतिविभ्रमजालैः स्वा-



तिरिक्तहेतोरपन्वृतां गतैः प्रयोजनाभावाय यथा पूर्णब्रह्मात्मना  
स्थितस्तथैव तिष्ठति कदापि नक्षुभ्यत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥  
ब्रह्मव्यतिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति यज्जानाति तत्संख्यज्ञानं तदव-  
बोधेन नित्यमेकमेवाद्वितीयमिति स्वजातीयविजातीयस्वगतभेदग-  
तसमाधिना निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रं यत्र संख्यायते तत्संख्यं तदेव  
सांख्यं परमाद्वैतशास्त्रं एतेनैव निर्विशेषब्रह्मस्वमात्रमित्येवबुद्ध्वा  
ब्रह्मविद्वरीयांसस्तेसांख्याः योगिनोजीवन्मुक्ता स्मृता इत्यर्थः  
॥ ३० ॥ ३१ ॥ भ्रूमध्ये तारकालोके शांतावंतमुपागते चैतनैकतने  
बद्धे प्राणस्यंदोनिरुध्यत इत्यादिश्रुतिसिद्धयुक्त्या प्राणाद्यनिलस्यं-  
दसंशांतौ सत्यामथ ये संप्रज्ञातसमाधिसाधनादेहत्रयवैरल्यादनामयं  
निर्मायत्वादनाद्यनंतं पदमागतालक्ष्यैकतानचित्तास्युस्तेयोगयोगि-  
नोजीवन्मुक्ताः स्मृताः इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ यथा शैलेन्द्रं मेरुं  
मुखनिर्गतविश्वासोच्छ्वासा न चालयन्ति तथा शीतोष्णसुखदुःखा-  
दयोयं ब्रह्मात्मनिष्ठं साम्यात् समभावान्नप्रोद्धरन्ति न चालयन्ति  
तस्याचितत्वेन तच्चित्तं मृतमिति विदुः सजीवन्मुक्त इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वाचामतीतविषयोविषयाशादशोऽभिमतः ॥ ३६ ॥

परानंदरसात्तुल्यो रमते स्वात्मनात्मनि ॥ ३७ ॥

निर्ग्रथिः शांतसंदेहो जीवन्मुक्तो विभावनः ॥ ३८ ॥

अनिर्वाणोऽपि निर्वाणश्चिन्नदीप इवस्थितः ॥ ३९ ॥

निर्धनोपि सदा तुष्टोऽप्यसहायोऽमहाबलः ॥ ४० ॥

नित्यतृप्तोऽप्यभुंजानोऽप्यसमः समदर्शनः ॥ ४१ ॥

कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ॥ ४२ ॥

शरीर्यप्यशरीरोऽसौ परिच्छिन्नोपि सर्वगः ॥ ४३ ॥

अध्यात्मरतिराक्षीनः पूर्णः पावनमानसः ॥ ४४ ॥

१ सजातीयविजातीयस्वगतभेदा गता रहिता यत्र सः । इत्यपिपाठः ।



( टीका ) यतोवाचोनिवर्तन्त इति श्रुत्य तुरोधेन वाङ्मानस-  
 वृत्तीनामतीतब्रह्मैव विषयो यस्य स वाचामतीतविषयः विषयासक्तः  
 स्यात्तथात्वं कथमित्यत आह विषयेति ब्रह्ममात्रविषयासितः पुरै  
 सांसारिकविषयाशादशा येनोष्मिता स तथोक्तः अस्त्वलितब्रह्म-  
 दृष्टित्वात् विषयानन्दवैशुध्यपूर्वकं परानन्दरसास्वादनतोविषयानन्दं  
 प्रत्यक्षुब्धचित्तोभवति सोऽयं विद्वान् आत्मानाऽखण्डाकारवृत्तिमदन्ता-  
 करणेन स्वात्मनि स्वे महिम्नि रमते रतिहेतुदाराद्यभावादित्यर्थः  
 ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्रग्रन्थयोव्यष्टिसप्तष्टिशपंचदशभेद-  
 ग्रन्थयोत्रा यस्माच्चिर्गताः सोऽयं निर्ग्रन्थिः अहमहं वानवेति संदेहोप-  
 स्य शांतः स शांतसंदेहः विगतस्वातिरिक्तभावनोविभावनः भावना-  
 सामान्यभावे निर्माणां नाशमेतीत्यत्राह अनिर्वाण इति नाशवदुपा-  
 धिवैरख्यात् चित्रार्पितरूपोपि जीवन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥  
 सांसारिकनुष्ठेहेतुधनादिहीनोपि स्वात्मनिक्षेपाप्सा सदैव तुष्टः  
 स्वातिरिक्तसहायशून्योऽपि महाबलः योगिनः सहायशून्यत्वात्  
 लोकवदभुंजानोऽपि ब्रह्माभूतरसास्वादान्नित्यतृप्तः स्वातिरिक्तप्र-  
 चासमोपि सर्वत्र सप्रदर्शनः नित्यादिकर्मकुर्वन्नपि अकर्तात्मधिया  
 किंचिदप्यकुर्वाणश्च भवति परदृष्ट्या प्रारब्धकर्माभासफलभोग्या  
 अयं स्वदृष्ट्या भोक्ता न भवति एष योगिलोकवत्परिच्छिन्नशरीर-  
 प्यऽशरीरि सर्वगतोभवति सदापरमद्वैताख्याध्यात्मशास्त्ररतिः सं-  
 महिम्न्यासीनः सर्वत्र परिपूर्णः सदा ब्रह्माहमस्मीति पावनमानसो-  
 जीवन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥  
 नैषकर्म्येण न तत्स्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः ॥ ४५ ॥  
 न समाधानजाप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः ॥ ४६ ॥  
 जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥ ४७ ॥  
 न तत्पश्यति चिदूरुपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति ॥ ४८ ॥



अहमन्नं सदानाद इति हि ब्रह्मवेदनम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्मविदुग्रसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैवतु ॥ ५० ॥

समाधिप्रथमकर्माणि माकरोतु करोतु वा ॥ ५१ ॥

हृदयेनात्तसर्वेहो लुक्त एवोत्तमाशयः ॥ ५२ ॥

( टीका ) यस्य ब्रह्मनिष्ठस्य मनोनिर्वासनं भवति तस्य श्रुतिस्मृत्युक्तनित्यादिकर्मभिर्नार्थः प्रयोजनमस्ति कर्मसामान्यं यतो निर्गतं तन्निष्कर्मं तद्भावो नैष्कर्म्यं तेन नैष्कर्म्येण सन्यासेनापि नाथोस्ति मनोनास्तीति धिया तत्समाधानं तन्निग्रहः प्रणवादिजाप्यं च, ताभ्यां समाधानजाप्याभ्यामपि न हि प्रयोजनमस्ति जीवन्मुक्तस्य स्वातिरिक्तसर्वापन्धवसिद्धब्रह्मभावनदृष्टित्वात् कर्मतत्सन्यासतारादिजपसमाधिभिः प्रयोजनाभावादित्यर्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ सर्वस्मात्परमात्मानं स्वमात्रतया वेत्तीति परमात्मवित् ब्रह्मविद्वरः प्रातिभासिकदृष्ट्या स्वातिरिक्तप्रपञ्चजातं जगज्जीवेशादिरूपेण पश्यन्नपि न हि तत्तथा पश्यति किंतु जगज्जीवेशादिकलनाकलितं जगच्चिद्रूपब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति ब्रह्मातिरिक्तस्य भृग्यत्वादित्यर्थः ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ स्वातिरिक्ततया यदविद्यमानं तदविद्यापदमज्ञमुच्यते तस्यापि स्वानतिरिक्तत्वादहमन्नं अपन्नोत्पद्यस्वातिरिक्तात्ताहं ब्रह्मविद्वरीयान् सदानादोभवामि इत्येव ब्रह्म वेद चिन्मयमिति ब्रह्मविद्वरीयान् सम्यग् ज्ञानात्सर्वं तु ब्रह्मात्मनैव ग्रसति एवं ग्रसित्वा स्वमात्रमेव शिष्यत इत्यर्थः ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ब्रह्मविद्वरीयान् हृदयेनात्तसर्वेहः सन्यहच्छया कदाचित्समाधिनाथवा श्रुतिस्मृत्युक्तकर्माणि करोतु कदापि माकरोतु वा सर्वथोत्तमाशयो मुनिः ब्रह्ममात्रभावारूढोजीवन्मुक्तो वा ब्रह्ममात्रावस्थानलक्षणविदेहमुक्तो वा भवतीत्यर्थः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अचरत्वाद्दरेण्यत्वाद्बधूतमंसारबंधनात् ॥ ५३ ॥



तत्त्वमस्यादिलक्ष्यत्वादवधूत इतीर्यते ॥ ५४ ॥

यो विलंघ्याश्रमान्वर्णागात्मन्येवं स्थितः पुमान् ॥ ५५ ॥

अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतः स कथ्यते ॥ ५६ ॥

यथारविः सर्वरसान् प्रभुङ्क्ते

हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः ॥ ५७ ॥

तथैव योगी विषयान् प्रभुङ्क्ते

न क्षिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ॥ ५८ ॥

( टीका ) ब्रह्ममात्रपदारूढो मुख्यावधूतोऽपि जीव इति चेन्न  
अवधूतशब्दार्थप्रकाशकहेतुचतुष्टयसत्त्वादवधूतो ब्रह्मविद्वरिष्ठस्तथाहि  
आद्यवर्णार्थहेतुरक्षरत्वादिति क्षराक्षरप्रपञ्चापन्हवसिद्धपरमाक्षरत्वात्  
द्वितीयवर्णार्थहेतुर्वरेण्यत्वादिति ब्रह्मविद्वरिष्ठे स्वावशेषतया वरणीय-  
रूपत्वात् तृतीयवर्णार्थहेतुर्दधूतसंसारबंधनादिति स्वातिरिक्तहेतोरप-  
न्हवविकृतसंसारबंधनत्वात् चतुर्थवर्णार्थहेतुस्तत्त्वमस्यादिलक्ष्यत्वादिति  
समष्टिव्यष्टिप्रपञ्चारोपापवादाधारशिवजीवपरप्रत्यक्षप्रविभक्तवाच्य-  
लक्ष्यहेयांशापन्हवमुखेन यत्स्वमात्रतया लक्ष्यते ज्ञायते तद्धि  
तत्त्वमस्यादिलक्ष्यं तद्भावस्तस्मान्मुख्यावधूतः परमात्मा ब्रह्मविद्व-  
रिष्ठो न जीव इत्यर्थः स्वकल्पितानेकभिदा प्रपञ्चो न दृश्यो यत्र  
पराक्षरं तत्र ज्ञात्वा स्वमात्रं परमाद्वयं यो मुख्यावधूतः सहि चित्-  
स्वरूप इति स्मृतेः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ परित्राद् पदमारूढो विद्वान्  
स्वातिरिक्तधिया विकल्पित वर्णब्रह्मचर्याद्याश्रमद्रविडगौडप्रविभक्त-  
नानाजातितद्धर्मानपि विलंघ्यातिक्लेश्य यः पुमानात्मन्येव स्वे  
महिम्नि सदास्थितो भवति सोतिवर्णाश्रमी वर्णाश्रमाचाराती-  
तो योगी गौणावधूतो जीवन्मुक्तो भवति स्वातिरिक्तवर्णाश्रमकल्प-  
नापूर्वकं तदतीतोऽस्मीति भ्रमारूढत्वात् गौणत्वं युज्यत इत्यर्थः  
॥ ५५ ॥ ५६ ॥ यथा रविः सूर्यः साध्यसाधुविषयगतसर्वरसान् भुङ्क्ते



यथा हुताशनोऽग्निश्च स्वक्षिप्तैधनादिकं भक्षयतीति सर्वभक्षोभवति  
च शब्दाद्वायुः सर्वरसान् शोषयति यथा रव्यग्निवायवो न लिप्यन्ते  
तथैवायं योगी रव्यादिवह्निशुद्धः सन् स्वकरणग्रामग्राह्यविषयान्  
मुद्धे स्वातिरिक्तविषयजातं नेति प्रसित्वा तद्गतपुण्यपापैश्च न  
लिप्यते लेपालेपेहेतुस्वातिरिक्तविषयैवरख्यादित्यर्थः ॥५७॥५८॥

केवलं सुसमः स्वच्छो मौनी मुदितमानसः ॥५९॥

संतोषाभृतपानेन ये शांतास्तृप्तिमागताः ॥६०॥

आत्मारामा महात्मानस्ते महापदमागताः ॥६१॥

हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः ॥ ६२ ॥

न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६३॥

अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः ॥६४॥

तिष्ठति ध्येयसंत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६५॥

मौनवाग्निरहंभावो निर्मानो मुक्तमत्सरः ॥६६॥

यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६७॥

यावती दृश्यकलना सखलेयं विलोकयते ॥६८॥

सा येन सुष्ठुसंत्यक्ता स जीवन्मुक्त उच्यते ॥६९॥

( टीका ) विद्वरः स्वातिरिक्तममुदितमानसः सदा संतुष्ट-  
चित्तोमौनी प्रत्यग्भावारूढतयातिस्वच्छहृदयः विशेषसामान्यविरलं  
केवलं ब्रह्मस्वमात्रमिति ज्ञात्वा सुसमः साम्यब्रह्मभावमापन्नो जी-  
वन्मुक्तोभवतीत्यर्थः ये ब्रह्मविद्वराः स्वातिरिक्तमपंचशांताः संतः  
निर्विशेषं ब्रह्म स्वमात्रमित्यवगतिसंजातेन निर्विशेषब्रह्मानंदामृत-  
पानेन नित्यतृप्तिमागता दारादिनैरपेक्ष्येणात्मन्येव रमन्त इति  
स्वात्मारामा भवन्ति ते महात्मानः निर्विद्वेषचित्ताभूत्वा महापदं  
महत्पदं ब्रह्म ब्रह्मविद्वरिष्ठत्वं वागता भवन्तीत्यर्थः ॥ ५९॥६० ॥  
॥ ६१ ॥ स्वेप्सितविषयलाभजोर्हर्षः विषयात्लाभजोऽमर्हर्षः द्वैतजं



भयं कामापुराणसंजातः क्रोधः इदं मे स्यादित्यभिलाषः स्वातिरिक्ता-  
 स्तित्वज्ञानी कृपास्तद्भावः कार्पण्यं एवं हर्षादिकार्षण्यांतदृष्टि-  
 भिर्विधिवशात् प्राप्ताभिः सविपर्ययाभिर्वा कदापि न हृष्यति स  
 जीवन्मुक्त इत्युच्यते इत्यर्थः ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ देहत्रयतदुपयोगि-  
 कौपीनाच्छादनभिक्षादावपि लीलयाहंकारममकारमयीं वासनां नि-  
 शेषतस्त्यक्त्वा स्वातिरिक्तध्यातृध्यानादित्रिपुटीत्यागी यस्तिष्ठति  
 सजीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ प्रपंचासंभवज्ञानं मौनं  
 तद्वानिर्विशेषप्रज्ञज्ञानी देहत्रयेऽपि निरहंभावः मानावमानवैरल्यानि-  
 र्मानः येन केन चोद्देशेन हृद्यर्पितदृढक्रोधोमत्सरोयस्यानिर्मुक्ता  
 समुक्तमत्सरः गतोद्वेगः संकल्पशून्यः सन् देहधारणमात्रोपयोगि-  
 भिक्षादिकर्म यः करोति सोऽयं मुनिर्जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६६ ॥  
 ६७ ॥ स्वाज्ञततिविकल्पितेयं स्वाविद्यापदतत्कार्यरूपिणी यावती  
 दृश्यकलना सत्यत्वेन व्यावहारिकत्वेन वा विलोक्यते सा येन  
 सम्यग्ज्ञानिना सुष्ठु संत्यक्ता सम्यगपन्हवतो गता भवति स जीव-  
 न्मुक्तो ब्रह्मविद्धरिष्ठ उच्यते इत्यर्थः ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

उद्वेगानंदरहितः समया स्वच्छया धिया ॥ ७० ॥  
 न शोचते न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७१ ॥  
 सर्वेच्छाः सकल्पाः शंकाः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः ॥ ७२ ॥  
 धिया येन परित्यक्ता स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७३ ॥  
 जन्मस्थितिविनाशेषु सोदयास्तमयेषु च ॥ ७४ ॥  
 सममेव मनोयस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७५ ॥  
 सर्वाधिष्ठानचिन्मात्रं निर्विकल्पे चिदात्मनि ॥ ७६ ॥  
 यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७७ ॥  
 क्रियानाशाद्भवेच्चिन्ता नाशोऽभावाः सनाक्षयः ॥ ७८ ॥  
 वासनाप्रक्षयो मोक्षः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७९ ॥



( टीका ) यो यं ब्रह्मविद्धरः स्वाभिलषितविषयालाभजः  
 क्रोध उद्वेगः स्वाभिलषितविषयलाभज आनन्दः स्वातिरिक्तं न  
 किञ्चिदस्तीतिसमया स्वच्छया धिया क्रोधात्मकोद्वेगानन्दवृत्तिवि-  
 रलः सन् तल्लाभालाभतो न शोचते नचोदेति विषादं हर्षं वा  
 न याति शोकहर्षहेतुः स्वान्तःकरणाभावात्सोऽयमचितोजीवन्मुक्तो-  
 भवतीत्यर्थः ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इदं मे स्यादिदं मे स्यादित्यप्राप्त-  
 वस्तुविषयकाः सर्वेच्छाः यावत्यः इदमिदं वा नवेति संशयविषयाः  
 सकलाः शंकाः प्राप्तव्यवस्तुनि पुनर्भोगेच्छारूपाः सर्वेहः देह एवाहं  
 जीवोऽहमीश्वरोऽहं ब्रह्माहमित्येवमाकाराः सर्वे निश्चया येन ब्रह्म-  
 विद्धरीयसा ब्रह्माकारपरिणतया धिया ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिद-  
 स्तीति परित्यक्ता मिथ्यात्वेनालोकितः भवन्ति सजीवन्मुक्त उच्यते  
 इत्यर्थः ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ यस्य ब्रह्मविद्धरीयसः स्वपरयोरुदया-  
 स्तमयाभ्यां सहितेषु सोदयास्तमयेषु जन्मस्थितिविनाशेषु च-  
 शब्दात् कारणीभूतपुण्यपापेष्वपि भवितव्यं भवत्येवेति सर्वं ब्रह्मेति  
 च मनः सममेव भवति समानमन्यत् ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ अविद्धि-  
 कल्पशतजुष्टसर्वप्रपंचारोपापवादाधिष्ठानचिन्मात्रे सर्वविकल्पग्रास-  
 निर्विकल्पके चिदात्मनि स्वमात्रतया साक्षात्कृते सत्यथ सर्वत्रगत  
 स्नेहः सन् यो जीवति सर्वेषु भूतेषु नश्यत्स्वपि सर्वात्मतयाऽवतिष्ठते  
 समानमन्यत् ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ फलेच्छया क्रियत इति क्रिया  
 तत्फलेच्छाभावात् क्रियानाशोभवति स्वकर्तव्याभावतया क्रिया-  
 नाशात्तत्फलचिन्तापि नाशमेति अस्माच्चितानाशात्तदेतुवासनाक्षयो-  
 भवति सर्वानर्थभूतवासनाप्रक्षयाधारोमोक्ष इति योजानाति स  
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

निर्विकल्पो च चिन्मात्रवृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते ॥८०॥

सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥८१॥



देहेन्द्रियेष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके ॥ ८२ ॥

यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८३ ॥

न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः ॥ ८४ ॥

प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८५ ॥

साधुभिः पूज्यमानोऽपि पीड्यमानोऽपि दुर्जनैः ॥ ८६ ॥

सममेव भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८७ ॥

यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोपि च ॥ ८८ ॥

अस्तंगतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८९ ॥

( टीका ) स्वाज्ञविकल्पितस्वातिरिक्तप्रपञ्चगतनानाविकल्पग्रा-  
सनिर्विकल्पा च सा चिन्मात्रगोचरवृत्तिरेव ब्रह्मात्मगोचरप्रज्ञेति  
कथ्यते यस्य योगिनः सर्वदा सा प्रज्ञा भवेत् स जीवन्मुक्त उच्यते  
॥ ८० ॥ ८१ ॥ स्थूलोऽहं कृशोऽहं शृणोमि पश्यामीत्यादिदेहेन्द्रियेषु  
ग्रहंभावः तदन्यके क्षेत्रदारादाविदंभावस्तावुभावपि कापि कचिदपि  
यस्य नो भवतः सोऽयं मुनिर्जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८२ ॥ ८३ ॥  
व्यष्टिप्रपञ्चास्पदं प्रत्यक्सप्तष्टिप्रपञ्चास्पदं ब्रह्म तयोर्भेदमाधाराधेय-  
योर्ब्रह्मसर्गयोः आधाराधेयता कार्यकारणता भास्यभासकता वास्ति-  
नास्तीति कथापि कथां च प्रज्ञया यो न विजानाति स जीवन्मुक्त  
उच्यते ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ब्रह्मविद्वरः साधुजनैरीश्वरधिया पूजितोपि  
दुर्जनैर्भ्रातोऽयमिति ताडितोपि पूजकताडकतत्कर्मादिकं सर्वं  
ब्रह्मेतिधिया यस्य चित्तं सममेव भवेत् स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८६ ॥  
॥ ८७ ॥ यस्य प्रत्यगाभिन्नब्रह्मभावपक्षस्य निर्विकल्पसमाधिभा-  
जोव्यवहारवतोपि वा समाहितव्यवहारदशयोरपि घटशरावादिकं  
स्थितमस्तंगतं वा तदवाच्छिन्नव्योमवदिदं ब्रह्मतत्त्वं स्वाज्ञादिदृष्टि-  
मोहे सत्यसति यथास्थितं भवति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८८ ॥ ८९ ॥



नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मनःप्रभा ॥९०॥  
 यथाप्राप्तस्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९१॥  
 योजागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ॥९२॥  
 यस्य निर्वासनोबोधः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९३॥  
 रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ॥ ९४ ॥  
 योऽनर्थाभवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९५॥  
 यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न क्षिप्यते ॥९६॥  
 कुर्वतोऽकुर्वतोवापि स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९७॥  
 यस्मान्नोद्विजते लोकोलोकान्नो द्विजते च यः ॥९८॥  
 हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९९ ॥

( टीका ) यस्य ब्रह्मविद्वरस्य मनःप्रभा प्रसन्नता सुखा-  
 भासोदये नोदेति नाधिकविकासतामेति दुःखाभासोदयेपि नास्तं  
 वैवर्ण्यमायाति ब्रह्मातिरिक्तं न किंचिदस्तीति यथा प्राप्तस्थितिर्भ-  
 वेत् सोऽयं तादृशमनःप्रसादवान् जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९०॥९१ ॥  
 यः प्रत्यक्प्रवणात्मना द्वैतसामान्यस्फुरणसुषुप्तौ तिष्ठतीति सुषु-  
 प्तिस्थोऽपि वागादिकरणग्रामवत्स्वयं सुषुप्तिं नैति किंतु जागर्ति सुख-  
 महमस्वाप्समिति प्रतीतिदर्शनात् तर्हीन्द्रियेन्द्रियार्थग्रहणलक्षणाजा-  
 गरणमस्य विद्यत इत्यत्राहं यस्येति यस्य निरवस्थस्य जाग्रत्  
 तदुपलक्षितानवस्थान्नयमपि न विद्यते यस्य बोधनिर्वासनोबोधः  
 अवस्थान्नयविकारविरलोभवति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥९२॥९३॥  
 स्वाभिलषितविषयस्पृहारागस्तदलाभजोद्वेषः द्वैतजं भयं कामाद्य-  
 रिषड्वर्ग आदिशुद्धार्थः परदृष्ट्या रागादितत्तदवृत्त्यनुरूपं चर-  
 न्नपि योऽयं मुनिर्घटशरावांतस्थव्योमवत् अतिस्वच्छरूपोभवति स  
 जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ यस्य निर्विशेषब्रह्मविदः

१ ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य वस्तुनोऽभावादिति नियमात् ।



साध्वसाधुकर्म कुर्वतोऽकुर्वतोवाऽपि देहाद्यवष्टंभेनाहमिदं साध्व-  
साधु कर्म करोमीत्यहंकृतोभावोन विद्यते यस्य बुद्धिः पुष्करयंत्र-  
स्थजलविंदुवत्कर्मणि तत्फले तदन्यत्र वा न लिप्यते सोऽयं मुनिः  
स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ यस्माद्योगिनः सकाशा-  
देतल्लोकोनोद्भिजते योलोकादपि नोद्भिजते ब्रह्मविद्धरस्य सर्वा-  
त्मारामतया स्वस्मात्परस्य परस्मात्स्वस्य वा नोद्भेगः संभवति या  
स्वभावतोहर्षामर्षभयोन्मुक्तः कुत्रापि हर्षविषादभयशून्योभवति स  
जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः ॥ १०० ॥

परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १०१ ॥

प्रजहाति यथा कामान् सर्वान् चित्तगतान्मुने १०२ ॥

मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १०३ ॥

चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने ॥ १०४ ॥

अक्षुब्धचित्तोविश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते १०५ ॥

इदं जगदयं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् ॥ १०६ ॥

यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १०७ ॥

शांतसंसारकलजः कलावानपि निष्कलः ॥ १०८ ॥

यः संचित्तोपि निश्चितः स जीवन्मुक्त उच्यते १०९ ॥

( टीका ) यथा परस्वाज्ञास्त्रविकल्पितशब्दाद्यर्थेषु मुहुर्मुहु-  
र्व्यवहरन् भ्रांतचित्तो भवति परिच्छिन्नदेहात्पट्टित्वात् बध्यते  
योऽयं तु ब्रह्मविद्धरीयान् समस्तकरणाभासग्राह्यार्थाभासजालेषु  
देहधारणगान्धोपयोगितया व्यवहार्यपि स्वात्मात्मीयाज्ञानतापाभा-  
वाच्छीतलः परिशांतांतरोभूत्वा यन्मया पूरितं विश्वं महाकल्पा-  
बुना यथेतिश्रुत्यनुरोधेन सर्वत्र परिपूर्णात्मा भवति स जीवन्मुक्त  
उच्यते ॥ १०० ॥ १०१ ॥ हे मुने ऋषे यदा यस्मिन्काले



कामाभासप्रसक्तिर्भवेत्तदा चित्तगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति  
स्वातिरिक्तकामजाततद्वेतुचित्तादिकं नास्तीति मयि सर्वात्मके  
प्रत्यगभिन्नपरमात्मनि यस्तुष्टः स्वानन्दभरितोभवति स जीवन्मुक्त  
उच्यते ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ चेतोवृत्तिविकल्पितविषयजातं चैतन्यं  
तदपवादाधिकरणातया तद्वर्जिताचिन्मात्रे ब्रह्मविद्वरिष्ठैरात्मतया  
सेवनीयपरमपावने पदे निपादस्यामृतन्दिवीति श्रुतिसिद्धनिर्विशे-  
षत्रिपदि योऽद्भुतचित्तः सन् विश्रान्तोभवति स जीवन्मुक्त  
उच्यते ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ इदं परिदृश्यमानं नामरूपात्मकं  
जगत् अयमन्यः सोऽहमेवंविधः अयं मे पिता इयं मे माते-  
त्याद्यवास्तवं दृश्यजातं यस्य ब्रह्मविद्वरीयसश्चित्ते कदापि न  
स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ यः स्वदृष्ट्या  
संशान्तजननमरणपरंपरारूपसंसारकलनोभवति यः स्वाज्ञदृष्ट्या  
षोडशकलाविकारदेहवान् चित्तवानपि माणादिनामांशषोडशकला-  
भावान्निष्कलः स्वांतःकरणवैरल्यान्निश्चितोभवति स जीवन्मुक्त  
उच्यते ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः ॥११०॥  
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते ॥१११॥  
देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम् ॥ ११२ ॥  
ब्रह्माहमिति यस्यांतः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११३॥  
यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः ॥११४॥  
परमानन्दपूर्णोऽयः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ११५ ॥  
नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः ॥११६॥  
किञ्चिदास्तित्वहीनोयः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११७॥  
अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ॥११८॥  
चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥११९॥



( टीका ) अचिद्व्यष्टिप्रपञ्चापवादाधारतया चिदात्माहं सम्-  
 ष्टिप्रपञ्चादपि परत्वेन विभानात् परमात्मागुणत्रयापवादाधाराभि-  
 गुणोऽहं परस्मात्साक्षिणोपि परत्वेन विभानात् परात्परोऽहमिति  
 स्वविकल्पितानात्मापन्हवसिद्धात्ममात्रेण यः सदा तिष्ठति स जीव-  
 न्मुक्त उच्यते ॥ ११० ॥ १११ ॥ देहत्रयातिरिक्तोऽहं स्थूलादि-  
 देहत्रयापवादाधारप्रत्यग्रूपत्वात् शुद्धचैतन्यमस्सम्यहमशुद्धप्रपञ्चा-  
 वादाधारशुद्धचैतन्यत्वात्, यस्यांतर्हृदये ब्रह्माहमस्मीत्यखंडाकारवृत्ति-  
 सदा स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ यस्य  
 देहादिकं देहादित्वेन नास्ति यस्य देहादिप्रपञ्चजातं ब्रह्मेतिनिश्चयो-  
 भवति यः परमानंदपरिपूर्णस्वांतोभवति स जीवन्मुक्त उच्यते  
 ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ अनित्यदुःखाभावाच्चित्यानंदः अपरोक्षीकृत-  
 स्वात्मत्वात् प्रसन्नात्मा स्वातिरेकेणान्यदस्तीत्यन्यचिंताविवर्जितः  
 प्रातिभासिकरूपेण वा किञ्चिदस्ति नास्तीति विभ्रमहीनोभवति  
 हि शब्दः स्वातिरिक्तासंभवद्योतकः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ११६ ॥  
 ॥ ११७ ॥ योऽहं प्रत्यग्रूपचिदात्मा सोऽहं परं ब्रह्मास्मीत्यर्थः अहं  
 ब्रह्म चिदहमिति योन्वहं भावयति स जीवन्मुक्त उच्यते इत्युक्तार्थ-  
 आवृत्तिरादरार्था ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ आहत्यवाक्यान्येकाधिक-  
 चतुःशतं ॥ ४०१ ॥ जीवन्मुक्तिप्रकरणविवरणं संपूर्णम् ॥ ८ ॥  
 जीवन्मुक्तिमहावाक्यजातार्थलब्धजीवन्मुक्तिपदारूढानां स्वानुभवं  
 प्रकटयितुं जीवन्मुक्तिवाक्यान्येकोनविंशत्यधिकशतम् ॥

ॐ तत्सदितिसाद्धांतिकजीवन्मुक्तिवाक्यान्येकोनविंशत्यधिक-  
 शतम् ॥

अथ साद्धांतिकस्वानुभूतिवाक्यानि

योसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥ १ ॥



तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम् ॥ २ ॥

तं शांतमचलमद्वयानंदचिद्धन एवास्मि ॥ ३ ॥

तत्पूर्णानंदैकबोधस्तद्ब्रह्मैवाहमस्मि ॥ ४ ॥

त्वंवाहमस्मि भगवो देवतेऽहंवै त्वमसि ॥ ५ ॥

सच्चिदानंदात्मकोऽहमजोऽहं परिपूर्णोऽहमस्मि ॥ ६ ॥

शुद्धाद्वैतब्रह्माहम् ॥ ७ ॥

वाचाभगोचरनिराकारपरब्रह्मस्वरूपोऽहमेव ॥ ८ ॥

( टीका ) अथ साद्धांतिकस्वानुभूतिमहावाक्यानि लिख्यन्ते योऽसावित्यादिना योऽसौ विश्वारोपाधारेश्वरात्मनावस्थितः सोऽसौ क्षराक्षरप्रपंचापवादाधारः पुरुषः पुरुषोत्तमो भवति यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम इति स्मृतः यः पुरुषोत्तमत्वेन विख्यातः सोऽहमस्मि भवामीत्यर्थः ॥ १ ॥ तत्तत्र देहे योऽहं प्रज्ञात्मा प्राणोऽध्यात्मं सोऽसावादित्यमंडलाभिमानी नान्प्रः योऽसावादित्ये पुरुषोवर्त्तते सोऽहं स एवाहं नान्योऽस्मि पुरुषादित्यगतप्रत्यक्परहेयांशापायसिद्धचैतन्यस्यैकत्वात् स यश्चाऽयं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एक इति श्रुतेः ॥ २ ॥ यः प्रत्यगधिष्ठपरमात्मतया तत्त्वमस्यादिमहावाक्यप्रतिपादितः तं मां प्रत्यक्परविभागैक्यगतविशेषांशशांतं कूटस्थरूपादचलं ब्रह्मविदो जानन्ति अहं तु द्वैतदुःखजडप्रपंचापन्हवसिद्धनिष्प्रतियोगिकानंदचिद्धन एवास्मि नान्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥ यत्तत्पदलक्ष्यपरिपूर्णानंदैकबोधरूपेणावशिष्यते तत्तादृग्विधं ब्रह्मैवाहमस्मि ब्रह्मातिरिक्तवस्तुवन्तराभावादित्यर्थः ॥ ४ ॥ हे भगवो भगवति सन्मात्ररूपिणी देवते त्वमेवाहमस्मि अहमेव त्वमसि प्रत्यक्पररूपयोगावयोरंतरं न विद्यत इत्यर्थः ॥ ५ ॥ अनृतप्रपंचग्रासं सत्जडप्रपंचग्रासरूपिणीचित्तदुःखप्रपंचग्रासं आनंदश्चात्मा स्वरूपं यस्य सच्चिदानंदात्मकोऽहं स्वस्मा-



इदमत्र जायतेऽन्यस्मादपि स्वयं न जायत इत्यजोऽस्मि स्वाविद्या-  
पदसत्त्वे तत्परिपूर्णाऽहमस्मि तन्नावे निष्प्रतियोगिकपूर्णाऽस्मीत्यर्थः  
॥ ६ ॥ अशुद्धद्वैतापन्धवसिद्धशुद्धाद्वैतरूपेणा वृंहणाद्ब्रह्माहं न  
जीवोऽस्मीत्यर्थः ॥ ७ ॥ बाह्यनोगोचरसाकारप्रपञ्चापवादाधारावा-  
ह्यनसगोचरनिराकारतमोपबृंहितब्रह्मस्वरूपोऽहमेव नान्य इत्यर्थः

सदोज्ज्वलोऽविद्या तत्कार्यहीनः स्वात्मबंधहरः  
सर्वदा द्वैतरहित आनंदरूपः सर्वाधिष्ठानसन्मात्रोनि-  
रस्ताविद्या तमोमोहोऽहमेवाहमोम् तत्सद्यत्परं ब्रह्म  
रामश्चंद्रश्चिदात्मकः सोऽहमोम् तद्रामभद्रः परं ज्योतीत-  
सोऽहमोम् ॥ ९ ॥ तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो  
नित्यशुद्धशुद्धमुक्तसत्यपरमानंदानंताद्वयपरिपूर्णः परमा-  
त्मा ब्रह्मैवाहं रामोऽस्मि ॥ १० ॥

( टीका ) निष्प्रतियोगिकब्रह्ममात्रतया ब्रह्मविद्वरेषु सदोज्ज-  
्वलति प्रकाशत इति सदोज्ज्वलः ब्रह्मविद्धरिष्टत्वयोगहेत्वविद्याया  
स्वात्मबंधः स्यादित्यत्राह अविद्येति स्वदृष्ट्या या न विद्ये  
साऽविद्या तत्कार्याग्रयनंतकोटिब्रह्माण्डानि तत्प्रसक्तस्तद्धिहीनः  
स्वाज्ञदृष्टिप्रसक्ताविद्याकृतस्वात्मबंधं जीवत्वं ब्रह्माहमिति स्वज्ञान-  
स्वदगेन हरति खंडयतीति स्वात्मबंधहरः स्वातिरेकेणा बंधं परि-  
कल्प्य तद्धरणव्यापारतोद्वैतापत्तिः स्यादित्यत्राह सर्वदेति सर्वदा-  
कालत्रयेऽपि बंधतद्धरणव्यापृतेर्मायिकवत्त्वात् द्वैतरहितः स्वस्या-  
द्वयत्वेन निरानंदता स्यादित्यत्राह आनंदरूप इति आनंदमात्ररू-  
पस्य निरानंदता कुत इत्यर्थः स्वाज्ञदृष्ट्या निरानंदोविषयानंदो-  
ऽपि स्यादित्यत्राह सर्वेति स्वातिरिक्तदुःखानंदसत्त्वे तत्सर्वाधिष्ठा-  
नतया सन्मात्ररूपोऽस्मि अधिष्ठेयसापेक्षाधिष्ठानयोगतः स्वावि-  
द्यातत्कार्यग्रस्तता स्यादित्यत आह निरस्तेति स्वाज्ञविकल्पिताधि-



वेद्यसापेक्षाविद्याकृताधिष्ठानतमोमोहोपतृन्नाननिरस्तः स निर-  
स्ताविद्यातमोमोहोऽहमेव यदहमोङ्कारार्थतुर्यतुरीयं ब्रह्म तत्सन्मात्रं  
परं ब्रह्म तन्मात्रतया राजते महीयते स्वातिरिक्तमपंचद्रावकश्च  
भवतीति रामचंद्रोऽहं योऽहं रामचंद्ररूपेण चिदात्मकः सोऽहमोतुरी-  
योकाराग्रविद्योतं ब्रह्म यदेवंविद्यं तद्रूपतो राजमानं महः स्वभक्तपटल-  
कैवल्यरूपभद्रप्रदं सत्सर्वस्मात्परमत्वेन ज्वलतीति परज्योतीरसोऽहं  
ग्रोतत्परं ब्रह्माहमस्मि तत्परः परमात्मेति श्रुतेः ॥ ९ ॥ वस्त्व-  
कारोकारमकारविदुनादकलाकलातीतमानायाः परतोविभातः सोऽयं  
तत्परः सर्वोत्तमत्वात् परमपुरुषः क्षराक्षरकलनातीतत्वात् पुराण-  
पुरुषोत्तमः अनित्यमपंचसत्तामदत्वाभित्यः अशुद्धोपाध्यभावाच्छुद्धः  
पूर्णबोधस्वरूपेण स्वेनैव बुद्धोऽस्मि माया तत्कार्यबंधतोमुक्तोऽस्मि  
कालत्रयाबाध्यसन्मानतत्वात् सत्योऽस्मि निरतिशयभूमानंदत्वात्पर-  
मानंदोऽस्मि परिच्छेदत्रयाभावादनंतोऽस्मि अपूर्णद्वैतासंभवादद्वैत-  
पूर्णोऽस्मि विराडादितुरीयांतकलनापरतोविभानात्परमात्परूपोऽस्मि  
तद्रूपेण सर्वत्र ब्रह्मणा ब्रह्मैवाहमस्मि अखिलादात्परमयाद्वा-  
मोऽस्मि ॥ १० ॥

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥ ११ ॥  
तेभ्योविलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ १२ ॥  
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥  
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्यहम् ॥ १४ ॥  
निर्वाणोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीप्सितः १५  
चिदात्मास्मि निरंशोऽस्मि परापरविवर्जितः ॥ १६ ॥  
ब्रह्मैवाहं सर्ववेदांतवेद्यं नाहं वेद्यं व्योमवातादिरूपम् ॥ १७ ॥  
रूपं नाहं नाम नाहं न कर्म ब्रह्मैवाहं सच्चिदानंदरूपम् ॥ १८ ॥

नित्यशुद्धोऽसुद्धमुक्तस्वभावः

सत्यः सूक्ष्मः सन्निभश्चाद्वितीयः ॥ १९ ॥



आनन्दान्धिर्यत्परः सोऽहमस्मि

प्रत्यग्धातुर्नात्र संशोतिरस्ति ॥ २० ॥

( टीका ) लोकत्रयदेहत्रयावस्थान्नयगुणत्रयात्मसु त्रिषु

धामसु यद्भोज्यादिनानाविधत्रिपुटीरूपं भवेत्तेभ्यस्त्रिधागतज्ञो-  
ज्यादित्रिपुटीविकारेभ्योविलक्षणः साक्षी स्वातिरिक्तसाक्ष्यभासक-  
त्वाच्चिन्मात्रोऽहं सदा कैवल्यरूपेण स्थितत्वात्सदाशिनोऽस्मि  
॥ ११ ॥ १२ ॥ जगत्कारणभावमापन्ने मय्येव सकलं बोद्ध-  
कला तत्कार्यजगज्जातरज्जुसर्पवत् कल्पितं यावत् स्वज्ञानं मयि सर्वं  
प्रतिष्ठितवद्भाति मद्ब्रह्मतिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति श्रुतिसिद्धसन्मा-  
त्रज्ञानान्मयि सर्वं लयं याति यद्द्वैतप्रपञ्चारोपापवादास्पदं तद्ब्र-  
ह्माद्वयमस्म्यहं ॥ १३ ॥ १४ ॥ नित्यमोक्षस्वरूपत्वाभिर्वाणरूपोऽस्मि  
मनोवृत्तिसामान्याभावाभिरीहोऽस्मि जगज्जीवेशादिविभागाभा-  
वान्निरंशरूपोऽस्मि इच्छाविषयीभूतसंवेद्याभावाभिरीप्सितोऽस्मि  
अचिदनात्माभावाच्चिदात्मरूपोऽस्मि अविभक्तचतुष्पदत्वाभिर्निरंशरू-  
पोऽस्मि ॥ १५ ॥ शिवजीवाभिधानपरापरकलनाविहीनोऽस्मि ॥ १६ ॥  
यदीशाद्यष्टोत्तरशतसर्ववेदांततोऽतन्निरसनमुखेन स्वेनैव वेदं तद्-  
ब्रह्मैवाहमस्मि व्योमवातादिपञ्चमहाभूतभौतिकरूपवेद्यमहं न भवामि ।  
अनृतजडदुःखात्मकनामरूपकर्मजुष्टप्रपञ्चापवादाधारतया  
सच्चिदानंदरूपं ब्रह्मैवाहमस्मि ॥ १७ ॥ १८ ॥ नित्यं शुद्धोबुद्ध-  
मुक्त इतिचतुष्टयं तत्पर इत्यस्मिन्वाक्ये व्याख्यातं स्वेनैव भवति  
स्वभावः पारमार्थिकत्वात्सत्यः सूक्ष्मबुद्ध्यनुगमात्सूक्ष्मः सत्त्वरूपेण  
बिम्बाकाशानुगमात्सद्भिर्बुद्ध्यास्मि द्वैतप्रपञ्चाभावाद्वितीयोऽस्मि अ-  
परिच्छिन्नानंदरूपत्वादानंदान्धिरस्मि यदितिलिगव्यत्ययः यः  
पराकप्रपञ्चमातिलोम्येनांचतीति प्रत्यक्सत्त्वासौ प्रपञ्चाधारोधातुश्च  
प्रत्यग्धातुः प्रत्यगाभिन्नपरमात्मा भवति मोहपरः परमात्मास्मीत्यत्र  
न संशोतिः संशयोस्ति ॥ १९ ॥ २० ॥



सोऽहमर्कः परंज्योतिरर्कज्योतिरहं शिवः ॥ २१ ॥

आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावहोम् ॥ २२ ॥

द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सच्चिदानंदलक्षणः ॥ २३ ॥

शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥ २४ ॥

निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि निराकृतिः २५ ॥

निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालंबोऽस्मि निर्द्वयः २६ ॥

केवलाखंडबोधोहं स्वानंदोहं निरंतरः ॥ २७ ॥

सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ २८ ॥

केवलं चित्सदानंदं ब्रह्मैवाहं जनार्दनः ॥ २९ ॥

अशुभाशुभसंकल्पैः संशान्तोऽस्मि निरामयः ॥ ३० ॥

( टीका ) योऽर्कादिस्थूलप्रपंचावभासकपरंज्योतीरूपश्चिदर्कः

सोऽहं चिदर्कज्योतिः शिवश्चाहं शुक्रः स्वच्छः प्रत्यगात्मज्योतिरहमसौ

ॐकारार्थविश्वविश्वाद्यविकल्पालुज्ञैकरसांतः सर्वज्योतिः परायणातु-

र्यतुर्योहं ॥ २१ ॥ २२ ॥ द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि अद्वैतत्वात् सच्चि-

दानंदलक्षणः अनृतजडदुःखप्रपंचापवादाधारत्वात् अत एव शुद्ध-

बोधस्वरूपोऽहं कार्यकारणनिर्मुक्तपूर्णबोधस्वरूपत्वात् केवलोऽहं

अशेषविशेषाभावात् स्वातिरिक्ताशिवप्रहाणात्सदाशिवोऽहं ॥ २३ ॥

॥ २४ ॥ क्रियाकारकाभावान्निष्क्रियोऽस्मि विकाराभावादविकारोऽस्मि

गुणात्रयाभावान्निर्गुणोऽस्मि निरुपाधिकत्वान्निराकृतिरस्मि नानावि-

कल्पाभावान्निर्विकल्पोऽस्मि अनित्यप्रपंचाभावान्नित्योऽस्मि ॥ २५ ॥

स्वातिरिक्तप्रतीकालंबनाभावान्निरालंबोऽस्मि द्वयरहितत्वान्नर्द्वयः

॥ २६ ॥ केवलनिर्विशेषखंडबोधोऽहं निरंतरस्वानंदोऽहं असत्याज्ञा-

नपरिच्छेदत्रयाभावात्सत्यज्ञानानंतरूपं तत्परं ब्रह्माहमेव ॥ २७ ॥

॥ २८ ॥ केवलनिर्विशेषचिद्बोधानंदयनोहं भज्यक्तजन्मनाशाव-

र्दयतीति जनार्दनोहं प्रवृत्तिनिवृत्त्यात्मकशुभाशुभसंकल्पजालसंशान-

तोऽस्मि स्थूलदेहाभावान्निरामयोऽस्मि ॥ २९ ॥ ३० ॥



नष्टेष्टानिष्टकलनः संविन्मात्रपरोऽस्म्यहम् ॥ ३१ ॥

अन्तर्याम्यहमग्राह्योनिर्देश्योऽहमलक्षणः ॥ ३२ ॥

अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमन्तरः ॥ ३३ ॥

अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः ॥ ३४ ॥

अविद्याकार्यहीनोऽहमवाङ्मनसगोचरः ॥ ३५ ॥

आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्धनः ॥ ३६ ॥

आप्तकामोऽहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम् ॥ ३७ ॥

चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्धनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥ ३८ ॥

ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायान्ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ॥ ३९ ॥

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरंजनः ४० ॥

निर्मलोनिर्विकल्पोऽहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः ४१ ॥

निर्विकारो नित्यपुनोनिर्गुणो निस्पृहोऽस्म्यहम् ॥ ४२ ॥

( टीका ) इष्टानिष्टात्मकमिन्नामित्रकलनाशून्योऽहं संविन्मा-

त्रपरब्रह्मास्म्यहं सर्वमेकत्वादन्तर्याम्यहं करणाग्राह्यत्वादग्राह्योऽहं  
स्वभेदेन निर्देष्टुमशक्यत्वादिर्देश्योऽहं लक्षणागम्यत्वादलक्षणोऽहं  
॥ ३१ ॥ ३२ ॥ स्वज्ञदृष्ट्याद्वैतोऽहं स्वाज्ञदृष्टिविकल्पितजीवरूपे-  
णापूर्णोऽहं बाह्यान्तःकलनाभावादबाह्यमन्तरोऽहं अत एव बाह्य-  
मनसगोचरोऽहं प्रत्यगभिन्नपरमात्माचैतन्यरूपोऽहं अत एव भूमानन्दचि-  
द्धनोऽहं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अवाप्तसमस्तकामत्वादाप्तकामोऽहं आकाशा-  
दिभूतभौतिकादपि परमत्वेनात्मत्वेन च स्वातिरिक्तापन्हवीकरणो-  
श्वरोऽस्म्यहं अचिददुःखाभावाच्चिदानन्दोऽस्मि चेता चैतन्यरूपोऽहं  
चिद्धनश्चिन्मयोऽस्म्यहमुक्तार्थः ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ प्रकाशस्वरूप-  
त्वाज्ज्योतिर्मयः स्वाविद्यापादादपि ज्यायानहं सूर्यादिज्योतिषाम-  
प्यवभासकज्योतिरस्म्यहं नित्योऽहमनित्याभावात् अत एव निरव-  
द्योऽहमकुत्सितत्वात् निष्क्रियोऽस्मि अविक्रियत्वात् निरंजनः सर्वत्रा-



संगत्वात् ॥३६॥४०॥ मायामलराहित्याभिर्मलोऽहं विकल्पाभावा-  
न्निर्विकल्पोऽहं आख्यानाभावान्निराख्यातोऽस्मि पूर्णत्वाभिश्चलोऽहं  
वयःकृतविकाराभावान्निर्विकारोऽहं नित्यशुद्धत्वाभित्यूलोऽहं हेयगु-  
णाभावान्निर्गुणोऽहं स्पृहणीयसंवेद्याभावान्निस्पृहोऽहं ॥४१॥४२॥

निरिन्द्रियोनियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥४३॥

पुरुषः परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ॥ ४४ ॥

पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥ ४५ ॥

प्रज्ञातोऽहं प्रज्ञातोऽहं प्रकाशः परमेश्वरः ॥ ४६ ॥

एकधा चित्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥ ४७ ॥

शुद्धोऽस्मि शुक्रः शांतोऽस्मि

शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ ४८ ॥

अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिम्नि सदास्थितः ॥४९॥

सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्धनः ॥५०॥

मानावमानहीनोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥५१॥

द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वंद्वहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥५२॥

( टीका ) अक्षरणात्वान्निरिन्द्रियोऽहं अंतर्यामित्वानियन्ताहं

अपेक्षणीयवस्त्वभावान्निरपेक्षोऽस्मि षोडशकलाभावान्निष्कलोऽहं

पूर्णत्वात्पुरुषः जीवेश्वरविलक्षणत्वात्परमात्माहं चिरंतनत्वात्पुराणोऽहं

सर्वोत्कृष्टत्वात्परमोऽस्म्यहं ॥४३॥४४॥ पूर्णानन्दतया कोऽस्मीति

बोधमात्ररूपोऽहं सर्वप्रत्यगात्मतयैकरसोऽस्म्यहं निष्प्रतियोगिकस्वमा-

त्रतया प्रज्ञातोऽहं प्रकर्षेण स्वातिरिक्तज्ञातोऽहं स्वयं प्रकाशमात्रोऽहं

परमेश्वरोऽहं सर्वेश्वरत्वात् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ब्रह्मविद्धरिष्ठैः सर्वा-

पन्धवसिद्धं ब्रह्मनिष्प्रतियोगिकस्वमात्रमित्येकधा चित्यमानोऽहं

सप्रतियोगिकद्वैताद्वैतयोः सविशेषत्वेन तद्विलक्षणोऽहं निष्प्रतियो-

गिकपरमाद्वैतरूपत्वात् अशुद्धाज्ञानाभावाच्छुद्धोऽस्मि स्वच्छत्वा-



च्छुक्रोऽस्मि स्वातिरिक्ततः शांतोऽस्मि ध्रुवत्वात् शाश्वतोऽस्मि  
परमकल्याणकैवल्यरूपत्वाच्छिवोऽस्मि ॥ ४७॥४८ ॥ सदाद्यावृ-  
त्तित्रयाभावादहं सकृद्विभातोऽस्मि सर्वदा स्वे महिम्नि स्थितोऽस्मि  
अनृतजडदुःखप्रपंचाभावाभिष्पतियोगिकसच्चिदानंदमात्रोऽहं स्वयं-  
प्रकाशरूपत्वेन चिद्वनोऽस्मि ॥ ४९॥५० ॥ देहाभिमानाभावा-  
न्मानावमानहीनोऽस्मि निर्गुणत्वाच्छिवोऽस्मि योद्वैतादिद्वंद्वकल-  
नाहीनः सोऽहमस्मि ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

भावाभावविहीनोऽस्मि भाषाहीनोऽस्मि भास्म्यहम् ॥ ५३ ॥  
शून्याशून्यविहीनोऽस्मि शोभनाशोभनोऽस्म्यहम् ॥ ५४ ॥  
सदसद्भेदहीनोऽस्मि संकल्परहितोऽस्म्यहम् ॥ ५५ ॥  
नानात्मभेदहीनोऽस्मि ह्यलंढानंदविग्रहः ॥ ५६ ॥  
बंधमोक्षविहीनोऽस्मि शुद्धं ब्रह्मास्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ५७ ॥  
चित्तादिसर्वहीनोऽस्मि परमोऽस्मि परात्परः ॥ ५८ ॥  
सदा विचाररूपोऽस्मि निर्विचारोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ५९ ॥  
ध्यातृध्यानविहीनोऽस्मि ध्येयहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ६० ॥  
लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि लयहीनरसोऽस्म्यहम् ॥ ६१ ॥  
मातृमानविहीनोऽस्मि मेयहीनः शिवोऽस्म्यहम् ॥ ६२ ॥

( टीका ) स्वातिरिक्तकलनास्तिनास्तीति प्रतीत्यभावाद्भावा-  
भावविहीनोऽस्मि वागादिकरणाभावाद्भाषाहीनोऽस्मि स्वमात्रभास्म्यहं  
अवस्थात्रयाभावात् शून्याशून्यविहीनोऽस्मि शून्यं सुषुप्तिराग्नातम-  
शून्यं जाग्रदादिकमिति चंद्रिकोक्तेः स्वातिरिक्तनिवृत्तिप्रवृत्त्यभावात्  
शोभनाशोभनोऽस्म्यहं ॥ ५३॥५४ ॥ स्थूलसूक्ष्मप्रपंचकलनाभा-  
वात्सदसद्भेदहीनोऽस्मि अमनस्क रूपत्वात्संकल्परहितोऽस्म्यहम् एका-  
त्मावशेषत्वात् नानात्मभेदहीनोऽस्मि अपरिच्छिन्नानंदमात्रत्वादस्व-  
१ हेताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वंद्वहीनोऽस्मीत्यनयोर्वाक्ययोर्योगेनेयं टीकाकृद्व्याख्या ।



ज्ञानंदविग्रहोऽस्मि ॥५५॥५६॥ नित्यमोक्षस्वरूपत्वात्सापेक्षबंधमो-  
क्षतत्साधनविहीनोऽस्मि शुद्धब्रह्मास्मीति योमन्यते ब्रह्मवित्तोप्यह-  
मस्मि चित्ततत्कल्पितकलनासर्वस्वाभावाच्चित्तादिसर्वहीनोऽस्मि सर्वो-  
त्कृष्टत्वात्परमोऽस्मि जराजरातीतपराजरात्वात्परोऽस्मि ॥५७॥५८॥  
सदा वेदांतविचारप्रादुर्भावाच्चिचारगम्योऽस्मि वस्तुतोयोऽहं निर्विचा-  
रोऽस्मि सोऽस्म्यहं ध्यात्रादिनानात्रिपुटीहीनोऽस्मि ॥ ५९ ॥ ६० ॥  
जगज्जीवेशादिभेदबलक्षयते द्वैतं तल्लक्ष्यं एवं यन्न लक्ष्यते  
तदलक्ष्यमद्वैतं पदमद्वयत्वात् लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि स्वातिरिक्तं  
पुरास्ति इदानीं लीयत इति अभावाल्लयहीनरसोऽस्म्यहं मात्रादि-  
त्रिपुटीहीनोऽस्मि ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृदप्यहम् ॥ ६३ ॥  
मुदितामुदिताख्योऽस्मि सर्वभौनफलोऽस्म्यहम् ॥ ६४ ॥  
षड्विकारविहीनोऽस्मि षट्कोशरहितोऽस्म्यहम् ॥ ६५ ॥  
देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगंबरसखोऽस्म्यहम् ॥ ६६ ॥  
अखंडाकाशरूपोऽस्मि अखंडाकारमस्म्यहम् ॥ ६७ ॥  
प्रपंचमुक्तचित्तोऽस्मि प्रपंचरहितोऽस्म्यहम् ॥ ६८ ॥  
सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् ॥ ६९ ॥  
कालत्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम् ॥ ७० ॥  
मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा ॥७१॥  
गंतव्यदेशहीनोऽस्मि गमनादिविवर्जितः ॥ ७२ ॥

( टीका ) वाक्श्रोत्रादिसर्वेन्द्रियविहीनोऽपि तत्तत्प्राण्यात्मना  
सर्वकर्मकृदप्यहं अपाणिपादोजवनोऽप्युहीतेत्यादिश्रुतेः स्वाभिन्नमोदनी-  
यामोदनीयविषयत्वात् स्वज्ञस्वाज्ञदृग्भ्यां मुदितामुदितोऽयमित्या-  
ख्या यस्य सोऽहमस्मि स्वस्वविषयव्यावर्तनपूर्वकं वागाद्यंतःकरणां-

१ अत्रापि पूर्ववद्योगेन व्याख्या ।



तत्सर्वमौनफलं ब्रह्मास्म्यहं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ जायतेऽस्ति वर्द्धते परिणमतेऽपक्षीयते विनश्यतीति षड्भावधिकारवदेहविलक्षणत्वात् षड्विकारविहीनोऽस्मि त्वद्भांसरुधिरस्नायुमज्जास्थिरूपषट्कोशरहितोऽस्मि देशकालवस्तुपरिच्छेदाभावात् देशकालविमुक्तोऽस्मि अवधूतकदंबात्मभावितमुखमात्ररूपोऽस्मि ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ खंडाकाशग्रासचिदाकाशरूपत्वादखंडाकाशरूपोऽस्मि अखंडाकारवृत्तिगम्यत्वादखंडाकारं ब्रह्माहमस्मि चित्तकल्पितप्रपंचरहितोऽस्मि निष्प्रपंचत्वात् ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ सूर्यादिघटांतत्सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि अचिन्मात्रग्रासचिन्मात्रज्योतिरहं भूतादिकालत्रयमुक्तोऽस्मि सर्वानर्थहेतुकामसंकल्पादिवृत्तिरहितोऽस्म्यहं ॥ ६९ ॥ ७० ॥ बंधसापेक्षमुक्तिहीनोऽस्मि स्वाज्ञादिविकल्पितबंधमोक्षभ्रमतोमुक्तोऽस्मि तूलाद्यविद्याद्वयापन्हवान्मोक्षहीनोऽस्मि सदा स्वातिरेकेण गंतव्यदेशहीनोऽस्मि निरूपाधिकत्वाद्गमनादिविवर्जितः ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सर्वदा समरूपोऽस्मि शांतोऽस्मि पुरुषोत्तम ॥ ७३ ॥

चिदक्षरोऽहं सत्योऽहं वासुदेवोऽजरोऽमरः ॥ ७४ ॥

अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यमद्वयम् ॥ ७५ ॥

परं ब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानंदमस्म्यहम् ॥ ७६ ॥

केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ॥ ७७ ॥

केवलं शांतरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥ ७८ ॥

केवलं नित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ॥ ७९ ॥

केवलं सत्यरूपोऽहमहं त्यक्त्वाहमस्म्यहम् ॥ ८० ॥

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः ॥ ८१ ॥

१ वागाद्यन्तःकरणान्तं सकलजडाविषयं ब्रह्मेति भावः । २ नित्यमुक्त इति भावः । ३ तूलेति, अत्रादिपदेन मूलाविद्याग्राह्या । कार्याविद्यातूला मूलाचकारणाविद्योप्यते ।



केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा ॥ ८२ ॥  
 निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः ॥ ८३ ॥  
 अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि अनंतानंदरूपवान् ॥ ८४ ॥  
 आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ॥ ८५ ॥  
 आदिमध्यांतशून्योऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ॥ ८६ ॥

( टीका ) स्वाज्ञदृष्टिविकल्पितविषमेषु सत्स्वपि सर्वदा सम-  
 रूपोऽस्मि स्वातिरिक्तवैषम्यसाम्यतः शांतोऽस्मि अचित्क्षराभावा-  
 च्चिदक्षरोऽहं वसंत्यस्मिन् भूतानीति वासुः दीप्यत इति देवः  
 वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवोऽस्मि जरामरणाभावादजरामरोऽस्मि  
 ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ क्षरपंचारोपापवादाधारतया परमाक्षरमद्वयं  
 वासुदेवाख्यं तद्वद्वाहमस्मि परब्रह्मेत्युक्तार्थं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥  
 सत्तात्त्वरूपत्वात्सत्त्वरूपोऽहं देहत्रयागोचराहंभावं त्यक्त्वाहमहमस्मि  
 निर्विभागाहंपदार्थोऽस्मीत्यर्थः ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ अर्द्धमात्रा  
 संगतया तुर्योऽस्मि अर्धमात्रातीतकेवलनिर्विशेषब्रह्मतया तुरीयाती-  
 तोऽस्मि ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ अपरिच्छिन्नानंदरूपत्वात् अनंतानंदरू-  
 पोऽस्मि हिशब्दोनिःसंशयार्थः ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ सर्वप्रत्यगभेदे-  
 नासमंताद्रमते महीयत इत्यात्मारामः निष्प्रतियोगिकपरमात्मरूपो-  
 ऽस्मि आदिमध्यांतवदविद्यापादातीतत्वेन आदिमध्यांतशून्योऽस्मि  
 ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नित्यशुद्धचिदानंदसत्तामात्रोऽहमव्ययः ॥ ८७ ॥

नित्यशुद्धविशुद्धैकः साच्चिदानंदमस्म्यहम् ॥ ८८ ॥

श्रुमानंदस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा ॥ ८९ ॥

सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्वनोऽस्म्यहम् ॥ ९० ॥

१ विषयगतविषयत्वोपादानन्तु तद्विरुद्धसमत्वपोषणाय । २ अर्ध-  
 मात्रासंग इत्यनेन अर्धमात्रोकारपदार्थाभेदोविवक्ष्यते ।



चित्तवृत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ॥ ९१ ॥

अहं ब्रह्मैव सर्वं स्यादहं चैतन्यमेव हि ॥ ९२ ॥

अहमेवाहमेवास्मि भूमाकारस्वरूपवान् ॥ ९३ ॥

अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात् परः ॥ ९४ ॥

अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवत् ॥ ९५ ॥

अहं शिष्यवदाभामि ह्यहं लोकत्रयाश्रयः ॥ ९६ ॥

अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः ॥ ९७ ॥

अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते व्यवस्थितः ॥ ९८ ॥

आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥ ९९ ॥

आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोह्यहमव्ययः ॥ १०० ॥

अखंडानंदरूपत्वाद्भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि अधिष्ठेयप्रपंचसत्त्वे  
तत्सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि वस्तुतो निरधिष्ठानतया च चिदूघनोऽहं  
चिन्मात्रोऽहमित्यर्थः ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ अचिदंतःकरणभा-  
वाच्चिदात्मैकरसोऽस्म्यहं स्वाशदृष्ट्या यत्सर्वं स्यात्स्वज्ञदृष्ट्या  
तद्ब्रह्मचैतन्यमहमेव भूमाकारेणाहमहमेवास्मि नान्यः पराक्साक्षि-  
णोऽपि परो महानात्माहमेव हि ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥  
स्वाज्ञदृष्ट्याहं स्वान्यशरीरवद्गुरुशिष्यादिवद्भामि स्वज्ञदृष्ट्या तु  
भूरादिलोकत्रयोपलक्षिताविद्या पदाश्रयः परमेश्वरवदाभामि  
भूतादिकालत्रयातीतसाजिवद्वेदांतशास्त्रवेद्यवत् चित्तवृत्त्यवभासक-  
प्रत्यगात्मवच्च भामि भूमानंदघन एवाहं अखंडानंदरूपत्वात्  
आत्मनाखंडाकारवृत्तिमन्मनसा स्वात्मन्येव तृप्तोऽस्मि पंचभूतविल-  
क्षणात्वादरूपोह्यहं अतएवाऽव्ययोऽस्मि सन्मात्रत्वात् ॥ ९५ ॥  
॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

आकाशावपि सूक्ष्मोऽहमाद्यंताभाववानहम् ॥ १०१ ॥

सत्तामात्रस्वरूपोऽहं शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ॥ १०२ ॥



सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दघनोऽस्म्यहम् ॥ १०३ ॥  
 नामरूपाविभुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः ॥ १०४ ॥  
 आदिचैतन्यमात्रोऽहमखंडैकरसोऽस्म्यहम् ॥ १०५ ॥  
 सर्वात्र पूर्णरूपोऽहं परास्मृतरसोऽस्म्यहम् ॥ १०६ ॥  
 एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मैवाहं न संशयः ॥ १०७ ॥  
 अहमेव परं ब्रह्म अहमेव गुरोर्गुरुः ॥ १०८ ॥  
 सर्वज्ञानप्रकाशोऽस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ॥ १०९ ॥  
 तुर्यातुर्यप्रकाशोऽस्मि तुर्यातुर्यादिवर्जितः ॥ ११० ॥  
 दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेक-  
 मक्षरम् ॥ १११ ॥

( टीका ) शब्दगुणकाकाशादपि निर्गुणात्वेन सूक्ष्मोऽहं उत्प-  
 त्तिप्रलयाभावात्सत्तामात्रस्वरूपोऽहं बंधसापेक्षविलक्षणत्वाच्छुद्ध-  
 मोक्षस्वरूपवानस्मि नामरूपविलक्षणत्वेन सत्यज्ञानानन्दरूपोऽस्मि  
 स्वेतरासहं सत्तासामान्यरूपत्वादादिचैतन्यमात्रोऽहं खंडप्रपंचाभा-  
 वादखंडैकरसोऽस्मि ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥  
 सर्वत्राऽविद्यापदेऽखंडैकरसात्मना पूर्णरूपोऽहं परश्चासावमृतश्चेति  
 परमानन्दरसोऽस्म्यहं सजातीयविजातीयस्वगतभेदकमेवाद्वितीयं  
 सन्मात्रं ब्रह्मैवाहमेव गुरोर्गुरुः जगद्गुरुणां ब्रह्मादीनामपि  
 स्वविज्ञानोपदेष्टृत्वात् स्वज्ञस्वाज्ञदृष्टिभ्यां तुर्यप्राज्ञादिरूपेण  
 भानात् तुर्यातुर्याप्रकाशोऽस्मि परमार्थदृष्टिविभातनिर्विशेषब्रह्ममात्र-  
 रूपेण तुर्यातुर्यादिवर्जितोऽस्मि आदिशब्देनावस्थाचतुष्टयमपि  
 गृह्यते ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ सर्वाव-  
 भासकप्रत्यक्स्वरूपोऽहं निरवयवत्वाद्गगनोपमानोऽस्मि माया तत्का-  
 र्यात्परोऽस्मि निरावृत्तत्वेन सदा विभानात् सकृद्विभातोऽस्मि



जन्माऽभावादजोऽस्मि अनेकाभावादेकोऽस्मि क्षराभावादक्षरोऽस्मि  
माया तत्कार्यलोपाभावादलेपकोऽस्मि सर्वाव्यापकत्वात्सर्वगतोऽस्मि  
यद्व्ययं ब्रह्मावशिष्यते सकलं जगच्च अहंचापि तदेव वस्तुतोऽहं  
जगत्तद्गोचरसकलं नास्ति विमुक्तोऽस्मि ॐ ॐ कारार्थतुर्यतुर्यो-  
स्मि ॥ १११ ॥

अलेपकं सर्वगतं यदव्ययं तदेव चाहं सकलं विमुक्तः ११२  
अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ॥ ११३ ॥  
अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयेत् ॥ ११४ ॥  
अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् ॥ ११५ ॥  
अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं ज्ञानानंदं प्रयच्छति ॥ ११६ ॥  
सर्वमंत्रान् समुत्सृज्य एतन्मंत्रं समभ्यसेत् ॥ ११७ ॥  
सद्योमोक्षमवाप्नोति नास्ति संदेहमप्यपि ॥ ११८ ॥  
ॐ तत्सदिति श्रीसार्द्धांतिकस्वानुभूतिवाक्यान्यष्टादशो-  
त्तरशतं ॥ अथसार्द्धांतिकसमाधिवाक्यानि । जीवात्म-  
परमात्मैक्यावस्था त्रिषुटिरहिता परमानंदस्वरूपा  
शुद्धचैतन्यात्मिका समाधिः ॥ १ ॥

( टीका ) गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयान्मन्तारं त्रायत इत्यहं  
ब्रह्मास्मीति मंत्रः जन्महेतुपुण्यपापजातं जगज्जीवेशादिभेदबुद्धिं  
तत्कार्यकोटिदोषं च विनाश्य ज्ञानानंदकैवल्यं प्रयच्छति यतोहं  
ब्रह्मास्मीति मंत्रः कैवल्यप्रापकोऽतः सप्तकोटिमहामंत्रान् सांगो-  
पांगान् सम्यक् उत्सृज्याहं ब्रह्मास्मीत्येतन्मंत्रं सदाभ्यसेत्सुप्तेरामृतैः  
समभ्यसेदेवं सदाहं ब्रह्मास्मीत्यनुसंधानात्सद्योमोक्षं विदेहकैवल्यं  
यातीत्यत्रायवपि संदेहोनास्तीत्यर्थः ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥  
॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ आहत्यवाक्यान्येकोनविंशत्युत्तर-  
शतं ॥ ५१८ ॥ स्वानुभूतिप्रकरणविवरणं संपूर्णम् ॥ स्वानुभूति-



विशिष्टजीवन्मुक्तानां संप्रज्ञातासंप्रज्ञातनिर्विकल्पसमाध्यर्थं साद्धी-  
तिकसमाधिवाक्यान्युच्यंते जीवात्मेत्यादिना व्यष्टिसमष्टिप्रपंचा-  
पवादाधारप्रत्यक्परैक्यावस्था व्यष्टिसमष्टिभिदा विकल्पशून्यनि-  
र्विकल्पात्मनास्थितिः तत्र ध्यात्रादित्रिपुटीरहिता सुखदुःखसा-  
मान्यवैरल्यात्परमानंदस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका निर्विकल्पकधी-  
वृत्यारूढा चिन्निर्विकल्पसमाधिरुच्यते ॥ १ ॥

ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवत् । ध्येयैकगोचरं  
चित्तं समाधिः ॥ २ ॥ प्रचारशून्यं मनः परमात्मनि  
लीनं भवति ॥ ३ ॥ प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये परमा-  
त्मनि हृदि संस्थिते देहे लब्धशांतिपदं गते तदा प्रभा-  
मनोबुद्धिशून्यं भवति ॥ ४ ॥ प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा  
धृतकुंभकांनासाग्रदर्शनदृढभावनया द्विकरांगुलीभिः  
षण्मुखीकरणेन प्रणवध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं  
भवति ॥ ५ ॥ पयस्त्रयानंतरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्व-  
न्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशोभवति ॥ ६ ॥

( टीका ) ध्यातृध्यानकलनां विहाय निवातप्रदेशारोपितदी-  
पवद्धयेयरूपब्रह्मैकगोचराखंडाकारचित्तवृत्तिः समाधिः ॥ २ ॥  
कामादिवृत्तिशून्यं मनः परमात्मभावमेति तन्मात्रावस्थितिः समा-  
धिः ॥ ३ ॥ श्रुत्यार्चायप्रसादलब्धशास्त्रजन्यज्ञानेन स्वानुभूतिज-  
न्यविज्ञाने प्राप्ते सति स्वहृदि ज्ञेयरूपे परमात्मनि स्वमात्रमिति  
संस्थिते देहत्रयमस्ति नास्तीति देहत्रयाभिमाने लब्धं शांतिपदम-  
पन्हवं गते सत्यथ तदानीमेव प्रभामनोबुद्धिकल्पितजाग्रदाद्यवस्था-  
त्रयं शून्यं भवति अपन्हवं भजतीत्यर्थः यत्र श्रोत्रादिभिः शब्दा-  
दिविषयजातं स्फुटं गृह्यते सोहंकृतपूर्णविकासः प्रभा जाग्रदवस्थे-  
त्युच्यते अहंकृतिविकासाथोयत्र मीयते तन्मानस्तत्कार्यं स्वप्न



उच्यते यत्राहंकृतिस्तनुभावमेत्य बुध्यते स बुद्धिस्तत्कार्यं पुष्टि-  
रुच्यते ॥ जाग्रदाद्यवस्थात्रयशांतिरेव निर्विकल्पसमाधिरित्यर्थः ॥ ४ ॥  
स्वातिरिक्तप्रसक्तौ तदुन्मूलनाय कर्मानासानयनद्वाराणि द्विकरा-  
गुलिभिरंगुष्ठतर्जनीमध्यमांगुलियुगलैः षण्मुखीकरणेन नासाग्रद-  
र्शनदृढभावनया च रेचकपूरकविरलकेवलकुम्भकावस्थायां ऊर्ध्वा-  
धोवृत्तिमत्प्राणापानयोरैक्यं कृत्वाथ दीर्घघंटानिनादवदनाहताख्य-  
हृदयं प्रणवध्वनिरुदेति तदवलंबनं मनोविलीयते तल्लयावस्थास-  
माधिरित्यर्थः ॥ ५ ॥ गोपालवत्सयोगतो धेनुस्तनगतपयःस्नावा-  
नंतरं तत्स्तनानां कंडूतिक्षयोभवति निरुपद्रवजनकधेनुस्तनक्षीर-  
मिव योगिनो योगमहिम्ना स्वस्वविषयाग्रहणपूर्वकं वाक्श्रोत्रादि-  
सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे सति योनिरालंबनमनोनाशोभवति सेयमम-  
नस्कावस्थैव समाधिरित्यर्थः ॥ ६ ॥

यदा पंचावतिष्ठते ज्ञानानि मनसा सह ॥ ७ ॥

बुद्धिश्च न विचेष्टती तामाहुः परमां गतिम् ॥ ८ ॥

संशांतसर्वसंकल्पा या शिलावद्वास्थितिः ॥ ९ ॥

जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरूपस्थितिः परा ॥ १० ॥

माकृतं मध्यसंचारे मनस्थैर्यं प्रजायते ॥ ११ ॥

योमनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोज्ञमनी ॥ १२ ॥

संरूपो सौमनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥ १३ ॥

लिङ्गाद्यरूपनाशस्तु वर्तते देहमुक्तिके ॥ १४ ॥

( टीका ) यदा तुर्यावस्थाविभक्तजाग्रदवस्थायां स्वांतर्बहिर्वि-  
षयसत्त्वेऽपि ब्रह्मैवेदं सर्वमिति श्रुत्यर्थानुभवज्ञानेन शब्दादिविषया-  
ग्रहणपूर्वकं ज्ञानानि पंचज्ञानेन्द्रियाणि स्वयं ब्रह्माकारतयाऽवतिष्ठते  
तद्धि तुर्यजागरणं ग्रहं ब्रह्मास्मीत्यनुभवतः संजातब्रह्मसाक्षात्कार-  
पूर्वभाविमनःकामादिवृत्ति विहाय स्वयं निर्विकल्पकतयाऽवतिष्ठते



स तुरीयस्वप्नोभवति गुणसास्यावस्थायामतर्बहिःकलनाशून्यत्वेन-  
 यया बुध्यते सैव बुद्धिः चशब्दस्तद्वृत्तिसमुच्चयार्थः पुनर्व्युत्थानपर्यंतं  
 न विचेष्टतीति यत्तदेव तुरीयसुषुप्तिरेवं बुद्धेर्निर्विकल्पकावस्था या-  
 वशिष्यते तद्वत्तद्व्युत्थानकलनाभावे तामेव योगिनः परमां गतिं  
 विदेहमुक्तमाहुः कथयन्तीत्यर्थः ॥७८॥ या पीवरशिलावदवस्थितिः  
 नित्या चलस्वरूपा संशांतसर्वसंकल्पादिनिवृत्तिः ततः देहत्रयाभा-  
 वाज्जाग्रदाद्यवस्थान्नयनिद्राविनिर्मुक्ता अवस्थान्नयेऽपि तत्त्वाप्रतिबोध-  
 लक्षणा निद्रायास्तुल्यत्वात् सेयं सर्वापन्हवसिद्धिब्रह्ममात्रपरास्थिति-  
 रवशिष्यते ॥ १० ॥ इगग्निमनोभिः सह प्राणुपापनैक्यान्निष्प-  
 न्नप्रत्यङ्मार्गते सुषुम्नानाडीमध्ये संचरति सति तत्रत्यचिदाकाशे  
 मनस्थैर्यं प्रजायते योमनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनोन्मनीर्वि-  
 कल्पकसमाधिर्भवति ॥ ११ ॥ १२ ॥ यथोक्तलक्षणाजीवन्मुक्तस्य  
 मुनेः पुनर्व्युत्थानार्हतया सौमनोनाशः सरूपनाश इत्यभिधीयते  
 समाध्यपगमे पुनर्व्यावृत्तिदर्शनात् लिङ्गादेः लिङ्गशरीरस्य पुनर्व्यु-  
 त्थानानर्हतया रूपं यथा भवति तथा विरूपनाशस्तुविदेहमुक्तौ विद्यते  
 तद्व्यावृत्तिहेतुकर्मत्रयापन्हवादित्यर्थः ॥ १ ॥ १४ ॥  
 चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीयचेतसाम् ॥ १५ ॥  
 सोच्यते शांतकलना जाग्रत्येव सुषुप्तता ॥ १६ ॥  
 नैतज्जाग्रन्नच स्वप्नः संकल्पानामभावनात् ॥ १७ ॥  
 सुषुप्तभावोनाप्येतदभावाज्जडता स्थितेः ॥ १८ ॥  
 सत्त्वावबोध एवासौ वासना तृणपावकः ॥ १९ ॥  
 प्रोक्तः समाधिशब्देन नतु तृष्णीभवस्थितिः ॥ २० ॥  
 निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ॥ २१ ॥  
 वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥ २२ ॥  
 दृश्यासंभवबोधेन रागद्वेषादितानवे ॥ २३ ॥



रतिर्बलोदिता या सा समाधिरभिधीयते ॥२४॥

( टीका ) क्षीणचेतसां योगिनां चित्तेऽन्तःकरणे संकल्पादि-  
चैत्यदशाहीने सति निर्विकल्परूपिणी या स्थितिरवशिष्यते सेयं  
जाग्रत्येव विषयाग्रहणालक्षणासुषुप्ता सर्वव्यावृत्तिशून्यतः शांतकल्-  
नानिर्विकल्पकसमाधिरुच्यते ॥ १५ ॥ १६ ॥ एतन्निर्विकल्पा-  
वस्थारूपं जाग्रन्न भवति वाङ्मन आदिचतुर्दशकरणाव्यावृत्त्यभावात्  
नचस्वप्नरूपं स्वांतःकरणचतुष्टयगोचरसंकल्पादिदृष्टिनामभावात्  
एतत्सुषुप्तभावोपि न भवति सुषुप्तिवज्जडतास्थितेरभावात् ॥ १७ ॥  
॥ १८ ॥ असत्प्रपंचापवादाधिकरणं सतोभावः सत्त्वं तत्सत्त्वमात्र-  
मित्यवबोधोऽसौ अनंतकोटिजन्महेतुवासनातृणाकूटभस्मीकरणादक्षा-  
ब्जलत्पावकोभवति ब्रह्ममात्रप्रबोध एव समाधिशब्देनोक्तः नत्व-  
चलवत्तृष्णीमवस्थितिः ॥ १९ ॥ २० ॥ जाग्रदाद्यवस्थानयविकारवि-  
रलया निर्विकाररूपया वृत्त्या पुनर्निर्विशेषब्रह्माकारतया च युक्तस्य  
योगिनः सम्यग्ब्रह्माकारवृत्तिविस्मरणमेव समाधिरित्याभिधीयते  
स्वात्सत्त्वेन सत्यत्वेन व्यावहारिकत्वेन प्रातिभासिकत्वेन वा  
स्वाज्ञादिदृष्ट्या दृश्यत इति दृश्यं स्वातिरिक्तप्रपंचजातं इदं प्रपंचं  
नास्त्येव नोत्पन्नं नोत्थितं पश्यतेहापि सन्मात्रमसदन्यत् ब्रह्ममात्र-  
मसंभवीत्यादिदृश्यासंभवप्रबोधेन स्वातिरिक्तदृश्यकल्पनाभूलराग-  
द्वेषादिस्तनुतामेति रागाद्यसंभवज्ञाने सति अथ या बलोदिता  
ब्रह्ममात्ररतिः सा समाधिरित्याभिधीयते ॥ २१ ॥ २२ ॥ २४ ॥ २४ ॥  
अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः ॥ २५ ॥  
समाधिः सतु विज्ञेयः सर्ववृत्तिनिरोधकः ॥ २६ ॥  
समाधिः संविदुत्पतिः परजीवैकतां प्रति ॥ २७ ॥  
ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते ॥ २८ ॥  
समाहिता नित्यतृप्ता यथा भूतार्थदर्शिनी ॥ २९ ॥



ब्रह्मन् समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः ॥३०॥

अश्रुब्धा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी ॥३१॥

ब्रह्मन् समाधिशब्देन मेरोः स्थिरतरा स्थितिः ॥३२॥

निश्चिता विगताभीष्टा द्वयोपादेयवर्जिता ॥३३॥

ब्रह्मन् समाधिशब्देन परिपूर्णमनोगतिः ॥३४॥

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ॥३५॥

तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥३६॥

( टीका ) प्रत्यगहमेव सर्वापवादाधिकरणं परं ब्रह्म तदेव सर्वावभासकप्रत्यगहमिति प्रत्यगभिन्नब्रह्मात्मना संस्थितिरेव तु सर्ववृत्तिनिरोधकः समाधिरिति विज्ञेयम् ॥ २५ ॥ २६ ॥ तत्त्वं पदलक्षयोः परजीवयोरेकतां प्रति ब्रह्ममात्रसंविदुत्पत्तिरेव समाधिरुच्यते ॥ २७ ॥ निर्विशेषं ब्रह्माहमिति सम्यग्गन्धानस्य विस्मृतिरेव समाधिः ॥ २८ ॥ हेब्रह्मन् ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति समाहिता निर्विशेषं ब्रह्मस्वमात्रमिति नित्यवृत्ता यथा भूतार्थदर्शिनी परा प्रज्ञा बुधैः समाधिशब्देनोच्यते ॥ २९ ॥ ३० ॥ ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीत्यनुभववलेन श्वासादिभिः कामादिवृत्तिभिर्वा लुब्ध विक्षेपरहिता देहदावहंभावविरला शीतोष्णादिद्वन्द्वेष्वननुपातिनी शोतोष्णादिस्फुर्तिवर्जिता मेरोरपि स्थिरतरा मनःस्थितिः ब्रह्मन् समाधिशब्देनोच्यते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चिता स्वातिरिक्ताऽऽश्रुदपरहिता अज्ञानं हेयं ज्ञानमुपादेयं तदुभयवर्जिता इत्थं विशेषणविशिष्टा मनोगतिः सर्वपरिपूर्णब्रह्मगोचरा प्रज्ञा ब्रह्मन् समाधिशब्देनोच्यते ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यथा सलिले सैन्धवपिण्डयोगतः सर्व सैन्धवत्वेन सलिलत्वेन वा साम्यं भजति तथा जलसैन्धवस्थानीयात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥ ३५ ॥ ३६ ॥



यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ३७ ॥

समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥ ३८ ॥

प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निराभयम् ॥ ३९ ॥

सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते ॥ ४० ॥

ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना ॥ ४१ ॥

संप्रज्ञातसमाधिः स्याद्दृष्ट्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥ ४२ ॥

प्रशांतवृत्तिकं चित्तं परमानंददीपकम् ॥ ४३ ॥

असंप्रज्ञातनामायं समाधियोगिनां प्रियः ॥ ४४ ॥

स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दाद्युपेक्षितः ॥ ४५ ॥

निर्विकल्पसमाधिः स्यान्निवातस्थितदीपवत् ॥ ४६ ॥

प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् ॥ ४७ ॥

अतद्यावृत्तिरूपाऽसौ समाधिर्मुनिभाषितः ॥ ४८ ॥

( टीका ) जीवात्मपरमात्मनोः प्रत्यक्षपरयोस्तयोः सच्चिदानंदत्वेन यत्समवशिष्यते तद्रूपोऽयं नष्टसमस्तसंकल्पजातः निर्विकल्पकसमाधिरभिधीयते ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अहंकारपूर्णास्वल्पाविकासात्मकप्रभामनोबुद्धिविकल्पितजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितत्कार्यसर्वस्वं शून्यमिति ज्ञात्वा तच्छून्यापवादास्पदमनाभयं निराभासं ब्रह्मास्मीति बोध एव समाधिरित्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ ४० ॥ देशादावहंभावं विना ध्यानाभ्यासप्रकर्षजातास्वहंकारसं ब्रह्मास्मीति ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाह एवास्वहंकारवृत्त्यात्मकः संप्रज्ञातसमाधिः स्यात् ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ प्रशांतस्वातिरिक्तस्थितिवृत्तिकम् चित्तं परमानंददीपकं सहोदयमात्ररूपेणावशिष्यते योऽयं निर्विकल्पकबोधोयोगिनां प्रियोभवति सोऽयमसंप्रज्ञातनामासमाधिर्भवति ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ निर्विशेषं ब्रह्मास्मीति स्वानुभूतिरसाभिनिवेशाद्दृश्यानुविद्धशब्दानुविद्धसविकल्पकसमाध्युपेक्षितः सुनेर्निवातस्थि-



ता चलदीपनञ्चिर्विकल्पकसमाधिर्भवति ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ प्रभा-  
जनोबुद्धिशब्दवाच्यावस्थानयशून्याधिकरणं चिदात्मकं चिन्मात्रं  
तदतिरिक्तं किञ्चित्पतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ निर्विकल्पकसमाधिर्मुनि-  
भिर्भावितोभवतीति ॥ ३७ ॥ ४८ ॥

ऊर्ध्वपूर्णमधः पूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ॥ ४९ ॥

साक्षाद्विधिमुखोद्घेष समाधिः पारमार्थिकः ॥ ५० ॥

ॐ तत्सदिति श्रीसार्द्धांतिकसमाधिवाक्यानि पं-  
चाशत् ॥ ५१ ॥ अथ सार्द्धांतिकाष्टविधिस्वरूपवाक्येषु-  
नानालिंगस्वरूपवाक्यानि श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसोमनो-  
यद्वाचोहवाचं स उग्राणस्य प्राणः ॥ १ ॥ योवै भूमात-  
त्सुखम् ॥ २ ॥ योवै भूमातदसृजम् ॥ ३ ॥ नेतिनेति नह्ये-  
तस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्यथ नाम ५ सत्यस्य सत्यमिति  
प्राणा वै सत्यं तेषामेव सत्यम् ॥ ४ ॥

( टीका ) अविद्यापदतुर्यभाग ऊर्ध्वशब्दार्थः तत्स्थूलांशोऽधः  
शब्दार्थः तत्सूक्ष्मबीजभागोमध्यमशब्देनोच्यते एकमूर्ध्वादिकलना-  
कलितमविद्यापदतत्कार्यजातं स्वाज्ञदृष्ट्याऽशिवमपि स्वज्ञदृष्ट्या  
शिवात्मकं शिवमात्रं सन्निप्रतियोगिकपूर्णं भवति अतभिरसनं  
विना साक्षात्पूर्णमेवावशिष्यत इति विधिमुखः ब्रह्ममुखः प्रकटितोद्घे-  
षसमाधिः पारमार्थिकरूपोभवति ॥ ४९ ॥ ५० ॥ आहत्यवाक्यान्त्ये-  
कोनसप्तत्युत्तरपंचशतं ॥ ५१ ॥ समाधिप्रकरणविवरणं संपूर्णं ॥ १० ॥  
निर्विकल्पकसमाधिनिष्ठानां यदात्मस्वरूपत्वेनाधिमतं तत्स्वरूप-  
प्रकटनायाष्टविधस्वरूपमहावाक्येषु नानालिंगस्वरूपवाक्यान्त्युच्यते  
श्रोत्रस्येत्यादिना स्वाज्ञदृष्ट्या स्वयमेव श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियपंचकं  
मन आधतःकरणचतुष्टयं वागादिकर्मेन्द्रियपंचकं प्राणादिवायुपंचकं  
भूत्वा स्वाज्ञदृष्ट्या श्रोत्रमनोवाक्प्राणेष्वसंगतया स्थित्वा श्रोत्रमनो-



वाक्प्राणानां स्वस्वविषयग्रहणशक्तिं जनयन्वस्तुतौयः स्वमात्रमव-  
शिष्यते सोऽयं समाधिनिष्ठात्माभवतीत्यर्थः ॥ १ ॥ योवा अपरि-  
च्छिन्नरूपोभूमा तत्स्वरूपं निरतिशयसुखं तत्स्वरूपेणावस्थानं  
परमामृतं विदेहकैवल्यमित्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥ प्रथमनेतिशब्देन  
स्वाविद्यापदस्थूलांशतद्व्यष्टिसमष्ट्याधारोऽपि निषिध्यते द्वितीय-  
तृतीयचतुर्थनेतिशब्दैः स्वाविद्यापदसूक्ष्मबीजतुर्यांशप्रपञ्चोनिषिध्यते  
एवं निषेधाधिकरणात्वेन नान्यत्परमस्ति अथ तदतिरिक्तं नामधेयं  
नाममात्रं वाचारंभणात्वात् नामधेयविश्रांतिस्वरूपं तु सत्यस्य  
सत्यमिति तत्र प्राथमिकसत्यशब्दार्थस्तु विश्वविराडीशादिप्राणश-  
ब्देनोच्यते तत्प्राणजातसत्तामदं तुर्यतुर्यातीतं वा भवति ॥ ४ ॥

रातेर्दातुः परायणम् ॥ ५ ॥ सपर्यगाच्छुक्रमकायम-  
ब्रणमस्नाविर ५ शुद्धमपापविद्धम् ॥ ६ ॥

परं ब्रह्म प्रणवश्च परस्मृतः ॥ ७ ॥

ननिरोधोनचोत्पत्तिर्नबद्धोनच साधकः ॥ ८ ॥

नमुमुक्षुर्नवै मुक्त इत्येवा परमार्थता ॥ ९ ॥

( टीका ) रातिरिति षष्ठ्यर्थे प्रथमा रातेः स्वातिरिक्तप्रपञ्च-  
धनस्य दातुः सर्वस्वसमर्पकस्य जीवन्मुक्तस्य यद्ब्रह्मपरायणं तत्परा-  
गतिरित्यर्थः यद्वा रातेर्मित्रस्य भक्तस्य य ईशोविज्ञानं ददाति तस्य  
भक्तविज्ञानदातुरीश्वरस्यापि परायणं पर्यवसानमित्यर्थः ॥ ५ ॥  
स परमात्मा परि समंतादगात् सर्वव्यापकोभवति तत्स्वरूपं तु  
शुक्रं शुक्लं ज्योतिष्मत् शुक्लतेजोमयं ब्रह्मेतिश्रुतेः तर्त्तिकं देहत्रय-  
विशिष्टं तत्राह अकायं कार्यकारणालिङ्गदेहत्रयवर्जितं अब्रणमस्ना-  
विवरं ब्रणशिरापुंजस्थूलदेहविरलं अतएव शुद्धाशुद्धदेहत्रया  
भावात् अपापविद्धं तद्धेतुपापपुण्यवर्जितं ॥ ६ ॥ स्वाशदृष्ट्या  
प्रणव एवापरं ब्रह्म विश्वविराडीशादिरूपेणोपवृहणात् स्वाशदृष्ट्या



प्रणवस्तु परस्तुत्युत्यु इति स्मृतः तुर्योकाराग्रविद्योतं तुर्यतुर्यमिति  
 श्रुतेः ॥ ७ ॥ सर्वापन्धवसिद्धनिष्प्रतियोगिकपरमात्मनः कदापि न  
 निरोधः प्रलयोऽस्ति निरोधाभावेऽप्युत्पत्तिः किं स्यादित्यत्राह  
 नचोत्पत्तिरिति अजत्वात् अजत्वेऽपि जीवरूपेण संसारवद्धत्वं  
 तन्निरसनसाधकत्वं स्वात्मबंधतोमुमुक्षुत्वं ज्ञानान्मुक्तत्वं च परमार्थतः  
 स्यादित्यत आह नेत्यादिना परमात्मा कदापि बद्धः साधकोमुमु-  
 क्षुर्मुक्तश्च न भवति स्वस्य निष्प्रतियोगिस्वमात्रतैव परमार्थता  
 पारमार्थिकीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ६ ॥

अखंडैकरसं शास्त्रमखंडैकरसा त्रयी ॥ १० ॥

अखंडैकरसो देहो अखंडैकरसं मनः ॥ ११ ॥

अखंडैकरसं सूत्रमखंडैकरसो विराट् ॥ १२ ॥

अखंडैकरसा विद्या अखंडैकरसो न्ययः ॥ १३ ॥

अखंडैकरसं गोप्यमखंडैकरसः शशी ॥ १४ ॥

अखंडैकरसं क्षेत्रमखंडैकरसा क्षमाः ॥ १५ ॥

अखंडैकरसास्तारा अखंडैकरसोरविः ॥ १६ ॥

अखंडैकरसा ज्ञाता अखंडैकरसा स्थितिः ॥ १७ ॥

अखंडैकरसा माता अखंडैकरसः पिता ॥ १८ ॥

अखंडैकरसो राजा अखंडैकरसं पुरम् ॥ १९ ॥

अखंडैकरसं तारमखंडैकरसो जपः ॥ २० ॥

सर्ववर्जितचिन्मात्रं त्वत्तामत्ताचचिन्मयम् ॥ २१ ॥

आदिरंतं च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादिचिन्मयम् ॥ २२ ॥

दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ॥ २३ ॥

सर्वाश्चर्यं च चिन्मात्रं देहश्चिन्मात्रमेव हि ॥ २४ ॥

अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादिचिन्मयम् ॥ २५ ॥

पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ॥ २६ ॥



देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ॥ २७ ॥

( टीका ) खंडमाया तत्कार्यापन्हवसिद्धमखंडैकरसं ब्रह्म तदतिरिक्तशास्त्रादिजपांतकलना नास्त्येव अपन्होतव्यमायाकार्यत्वात् यदि ब्र्यावहारिकादिदृष्ट्या शास्त्रादिप्रसक्तिः सदा शास्त्रादिजपांतमखंडैकरसं ब्रह्मैवेत्यर्थः स्वातिरिक्तकसर्वविद्वर्जितं अचित्प्रपंचापन्हवसिद्धं चिन्मात्रं निष्प्रतियोगिकमित्यर्थः स्वातिरिक्तत्वत्तादिजीवांतकलनायां सत्यां चिन्मात्रता कुत इत्यत्राह त्वतेत्यादि स्वाज्ञदृष्ट्या त्वत्तादिकलनाप्रसक्तो स्वज्ञदृष्ट्या सर्वं चिन्मात्रमेवेत्यर्थः देहत्रयादिषु स्वांतकलनासत्वात्कथं चिन्मात्रतेत्याशङ्क्य चिन्मात्रसाधकहेतुनुपन्यस्यति ॥ २७ ॥

जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् ॥ २८ ॥

लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ॥ २९ ॥

चित्ताभावाच्चिंतनीयं देहाभावाज्जरा न च ॥ ३० ॥

पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ॥ ३१ ॥

मृत्युर्नास्ति जनाभावाद्बुध्यभावात्सुखादिकम् ॥ ३२ ॥

अतस्तदिति सार्द्धांतिकनानालिंगस्वरूपवाक्यानि द्वात्रिंशत् अथ सार्द्धांतिकपुल्लिङ्गस्वरूपवाक्यानि स एषोकलोमृतः ॥ १ ॥ नांतः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः ॥

( टीका ) देहत्रयेति जीवत्रयगुणाभावादित्यत्र जीवत्रयं गुणत्रयं चेति मंतव्यं शिष्टं स्पष्टं आहत्यवाक्यसंख्या एकत्रिंशदुत्तरषट्शतं नानालिंगस्वरूपमहावाक्यविवरणं संपूर्णम् ॥ अथ सार्द्धांतिकपुल्लिङ्गस्वरूपमहावाक्यानि लिख्यन्ते स इत्यादिना य एष चिद्धातुः स एव प्रश्नोपनिषत्प्रवृत्तिप्राणादिनामांतषोडशकलापवादास्पदत्वादकलः निष्प्रतियोगिकनिष्कलत्वादयममृतः विकले-



वरकैवल्यरूपत्वात् ॥ १ ॥ नान्तःप्रज्ञमित्यादिपाठक्रमादर्थक्रमोव-  
लीयानिति न्यायेन विश्वतैजसविराट्सूत्रैक्योन्नेत्रनुज्ञातृभिदायोगात्  
नाहं बाह्यांतर्भवस्थूलसूक्ष्मप्रपंचोभयतः प्रज्ञः जाग्रत्स्वापाभिविभक्त-  
तैजसप्रपंचनस्य विश्वविश्वप्रपंचनपूर्वकत्वात् न स्थूलप्रज्ञं न सूक्ष्म-  
प्रज्ञमित्यादिश्रुत्यंतराच्च नाहं बहिः प्रज्ञः व्यष्ट्यादिकलनाजुष्टजा-  
गरणाजागरणाभिमानि विश्वविश्वविराड्विराडैक्योन्नेतृकलनाभा-  
वात् तथा नांतः प्रज्ञः व्यष्टिसमाष्टितदैक्ययोजनं सर्वत्र समं जाग्र-  
त्स्वप्नाभिमानिविश्वतैजसविराट्सूत्रैक्योन्नेत्रनुज्ञातृभिदायोगात् नाहं  
बाह्यांतर्भवः स्थूलसूक्ष्मप्रपंचोभयतः प्रज्ञः जाग्रत्स्वप्नाभिमानिविश्व-  
प्राज्ञविराट्वैक्योन्नेत्रनुज्ञैकरसाभिधानवैरल्यान्नाहं बाह्यांतर्भवस्थू-  
लसूक्ष्मप्रपंचोभयतः प्रज्ञः जाग्रज्जाग्रदादिभावाभावप्रज्ञाभिमानिवि-  
श्वविराट्पुण्यैक्योन्नेत्रविकल्पायोगात् एवं स्थूलप्रपंचापवादकुड्मल-  
विद्धवति नाहमज्ञः स्वप्नजागरणाभिमानितैजसविश्वसूत्रविराडैक्या-  
नुज्ञातृनेतृकलनाया सृज्यत्वात् ॥

प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृश्यमव्यवहार्यम-  
प्राज्ञमलक्षणमचित्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपं-  
चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा  
सविज्ञेयः ॥ २ ॥

( टीका ) अर्थक्रमानुसारेण प्रज्ञानघनमिति वाक्यार्थं पश्चा-  
द्विवक्षुणादृश्यपदार्थं उच्यते अहमदृश्यः स्वप्नस्वप्नाभिमानिचि-  
त्तकल्पितदृश्यमोहिततैजसतैजससूत्रसूत्रतदैक्यानुज्ञात्रविकल्पविल-  
क्षणत्वात् एवं स्थूलसूक्ष्मप्रपंचापवादकुड्मलविद्धो भवति अहम-  
प्राज्ञः स्वापजागरणाभिमानिस्वाज्ञानवृत्तिग्राह्यप्राज्ञविश्वबीजविराडै-  
क्यानुज्ञैकरसोन्नेतृभावहानात् अहमलक्षणाः स्वापस्वप्नाभिमानि-  
स्वाज्ञानवृत्तिलक्षणावेद्यप्राज्ञतैजसबीजसूत्रैक्यानुज्ञैकरसानुज्ञानभिदा



संभवात् अहमर्चित्यः न किञ्चन वेदिषमिति परामर्षचित्यस्वापस्वा-  
पाभिमानिप्राज्ञप्राज्ञबीजबीजैक्यानुज्ञैकरसानुज्ञैकरसविलक्षणत्वात्  
अहमव्यपदेश्यः स्वापतुर्यावस्थाभिमानिस्वापजाग्रदादिभावाभाव-  
सान्तित्वव्यपदेश्यप्राज्ञबीजतुर्यैक्यानुज्ञैकरसाविकल्पकलनाशून्यत्वात्  
एवं स्थूलसूक्ष्मबीजप्रपञ्चापवादकृत् ब्रह्मविद्धरीयान् भवति अह-  
मेकात्मप्रत्ययसारः तुर्यजागरणाभिमानिध्याजाद्यनेकप्रत्ययसारतुर्य-  
विश्वविराट् तदैक्याविकल्पोन्नेतृवाह्यत्वात् अहं प्रपञ्चोपशमः तुर्यस्व-  
प्नाभिमानिक्वचित्कदाचिदशांतप्रपञ्चतुर्यतैजससूत्रैक्याविकल्पानुज्ञा-  
तृकलना अयोगात् अहं शांतः तुर्यस्वापाभिमानिगुणसास्यावस्था-  
शांततुर्यप्राज्ञबीजतदैक्याविकल्पानुज्ञैकरसगतहेयांशाभावात् एवं  
स्थूलसूक्ष्मबीजतुर्यावस्थाभागत्रयापवादकृद् ब्रह्मविद्धरिष्ठो भवति अ-  
हमेव शिवः जाग्रज्जाग्रदाद्यविकल्पानुज्ञैकरसांतचतुष्पञ्चदशकलना  
शिवापन्हवसिद्धतुर्यतुर्यस्वरूपत्वात् अत एवाहमद्वैतः निष्प्रतियो-  
गिकत्वात् उक्तविशेषणाविशिष्टमात्मानं ब्रह्मविद्धरिष्ठाश्चतुर्थं तुर्य-  
तुरीयं वा मन्यन्ते स एवात्मा स्वातिरिक्तानात्मापन्हवसिद्धस्वमा-  
गतया विशेषः ॥ २ ॥

अमात्रश्चतुर्योऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः  
यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति  
स भूमा ॥ ४ ॥ स एष नेति नेत्यास्मागृह्योनहि गृह्यते  
ऽशीर्षोनहि शीर्यतेऽसंगोनहि सज्यतेऽसितो न व्यथते  
न रिष्यति ॥ ५ ॥ रसघन एवैवं वाऽरेऽयमात्माऽनंतरोऽ-  
बाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ॥ ६ ॥ तस्मान्मनोविलीने  
मनसि गते संकल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः ॥

( टीका ) अमात्रः स्थूलाकारादिपश्यन्त्यंतपञ्चदशमात्रापन्हव-  
सिद्धत्वात् चतुर्थः तुर्योकाराग्रविद्योतनात् अव्यवहार्यः तुर्यातुर्या-



वृगतेः स्वातिरिक्ताभिधानाभिधेयभिदा विशिष्टनानाव्यवहृत्यपन्ह-  
वपूर्वकत्वात् प्रपञ्चोपशमः निष्प्रतियोगिकनिष्प्रपञ्चत्वात् शिवः  
स्वातिरिक्ताशिवप्राप्तत्वात् अद्वैतः परमाद्वैतत्वात् ॥ ३ ॥ यत्र  
यस्मिन् स्वमात्रे ब्रह्मविद्धरीयान् स्वातिरेकेणान्यत्किंचिदपि  
रूपजातं न पश्यति शब्दजातं न गृणोति सदसद्वस्तुजातं न वि-  
जानाति स भूमा परमात्मेत्युच्यते ॥ ४ ॥ योनेति नेत्यतद्याह-  
त्याविभातः स एष नेतिनेतीति निषेधाधारः परमात्माऽवशिष्यते स  
कर्मैन्द्रियैर्नष्टहत इत्यग्राह्यः योनहि शीर्यते जीर्यते सोऽशीर्यः अश-  
रीरत्वात् यः केनापि नहि सज्जते सोऽसंगः अमूर्तत्वात् अत  
एवायमसितोन व्यथते नच्छिद्यते न रिष्यति न नश्यति ॥ ५ ॥  
अरे मैत्रेय अयमात्मा सच्चिदानन्दरसघन एव एवं वै रसघन एव  
वै भवतु अंतर्बाह्ययोगतस्तस्य विशेषता स्यादिति तत्राह अनंतरः  
अबाह्य इति अंतर्बाह्यविभागशून्यः अत एव कृत्स्नः स्वाति-  
रिक्तांतर्बाह्यांतराभावात् आत्मैवेदं सर्वमिति श्रुतेः वस्तुतोऽयं  
प्रकर्षेण ज्ञानघन एव चिन्मात्रत्वात् ॥ ६ ॥ यस्मात्स्वातिरेकेण  
मनोऽस्तीति विभ्रमात् महाननर्थो जातस्तस्मात् नाविद्यास्तीह  
नो माया परं ब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनोनहीत्यादिश्रुत्यर्थसंस्कृत-  
ज्ञानदृष्ट्या मनोविलीयते मनस्यभावपदं गते सत्पथतत्कार्यसंकल्प-  
तत्कार्यपुण्यपापादिदाहोभवति ततो जाग्रज्जाग्रदादिचतुःपञ्चदशक-  
लनाग्रासः सदाशिवः ॥

ॐ शक्त्यात्मकसर्वत्रावस्थितस्वयंजयोतिः शुद्धो-  
नित्यो निरंजनः शांततमः प्रकाशयति ॥ ७ ॥ एष शुद्धः  
पूतः शून्यः शांतोऽप्राणोऽनीशात्माऽन्तोऽक्षय्यस्थिरः  
शाश्वतोऽजः स्वतंत्रः स्वे महिम्नि तिष्ठति ॥ ८ ॥ चक्षु-  
षोर्द्रष्टा श्रोत्रस्य द्रष्टा मनसोर्द्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टा प्राणस्य



द्रष्टा तमसोद्रष्टा सर्वस्य द्रष्टा ततः सर्वस्मादन्योवि-  
लक्षणः सद्ब्रह्मोऽयं चिदुघन आनन्दघन एवैकरसोऽव्यव-  
हार्यः ॥ ९ ॥ सन्मात्रो नित्यशुद्धो बुद्धः सत्यो भूलो निरं-  
जनो विश्वरूप इत्यनन्दः परः प्रत्यगेकरसः ॥ १० ॥

( टीका ) ॐ इति तुरीयोऽङ्काररूपेण स्वमात्रमवशिष्यते स  
कुत्रासनमर्हतीत्यत्र ब्रह्मप्रणवावयवभूतचतुःपञ्चदशकलनानिर्वाह-  
कशक्त्यात्मकः सन् स्वाविद्यापदे सर्वत्रावस्थितः स्वातिरिक्तसर्वयो-  
गतोजडत्वाशुद्धत्वानित्यत्वसंगत्वादितमः प्रसक्तो तदपन्हवासिद्धतया  
स्वयमेव स्वमात्रतया ज्वलति अतोऽयमजडः शुद्धो नित्यो निरंजनः  
शांततमो भूत्वा स्वाज्ञदृष्टिप्रसक्तस्वातिरिक्तकलनां प्रकाशयति ॥ ७ ॥  
एष परमात्मा स्वभावतः शुद्धः पूतः अंतःकरणशून्यः अशां-  
तव्यापारकर्मज्ञानेन्द्रियप्राणपञ्चकाभावात् शांतः स्वातिरिक्तमुख्यः  
प्राणाभावादप्राणः जीवरूपेणास्वतंत्रत्वादनीशात्मा अपरिच्छि-  
न्नत्वादनन्तः षड्भावविकाराभावादक्षयः सत्तामात्रत्वात् स्थिरः  
चिरंतनत्वाच्छाश्वतः परमेश्वरत्वात् स्वतंत्रो वस्तुतो निर्विशेषरूपेण  
स्वे महिम्नि तिष्ठति ॥ ८ ॥ चक्षुरादिदर्शेन्द्रियांतःकरणचतुष्टयं  
प्राणादिपञ्चकतत्कारणतमसोपि भावाभावद्रष्टृत्वादयमात्मा सर्वस्य  
द्रष्टा सर्वज्ञाक्षित्वात्ततः स्वदृश्यात्सर्वस्मादन्यो विलक्षणः स्वाति-  
रिक्तानृतजडदुःखप्रपञ्चापन्हवात्सद्ब्रह्मोऽयं चिद्वन आनन्दघन एवं  
सच्चिदानन्दरसानां मिथोभिदाप्रसक्तावेकरसः व्यवहार्यप्रपञ्चाभा-  
वादव्यवहार्यः ॥ ९ ॥ सन्मात्रादिसत्यपदं व्याख्यातं व्याप्यसत्त्वे-  
विभुर्व्यापकः द्वैतदुःखाभावादद्वयानन्दः परः परमात्मा प्रत्यगे-  
करसः प्रत्यगभिन्न इत्यर्थः ॥ १० ॥

अदृष्टोऽव्यवहार्योऽप्यल्पो नाल्पः साक्ष्यविशेषः स-  
र्वज्ञो अनन्तोऽभिन्नोऽद्वयो विदिता विदितात्परः ॥ ११ ॥



अद्वैतपरमानन्दो विभुर्नित्यो निष्कलंको निर्विकल्पो  
 निरंजनो निराख्यातशुद्धो देव एकोनारायणो न द्विती-  
 योऽस्ति कश्चित् ॥ १२ ॥ अबधुर्विश्वतश्चक्षुरकर्णो विश्वतः  
 कर्ण अपादो विश्वतः पाद अपाणिर्विश्वतः पाणिरहस-  
 शिरा विश्वतः शिरा विद्यामात्रैकसंश्रयो विद्यारूपः ॥ १३ ॥  
 दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ १४ ॥

( टीका ) स्वातिरेकेण केनाप्यदृष्टः अनिदंस्वभावादव्यव-  
 हार्यः मन आद्युपाधिसत्त्वासत्त्वाभ्यामल्पोऽपि नाल्पः भूमरूपत्वात्  
 साक्ष्यसत्त्वे साक्षी वस्तुतो निर्विशेषः सर्व ज्ञानातीति सर्वश्चासौ ज्ञश्चेति  
 स्वातिरिक्तसर्व नास्तीति वा सर्वज्ञः अनन्त इत्यादिपदत्रयं व्या-  
 ख्यातं मूर्तत्वेन विदितादमूर्तत्वेनाविदितादपि परः सर्वविलक्षण-  
 त्वात् ॥ ११ ॥ मायाकलंकाभावान्निष्कलंकः विश्वविश्वादिवि-  
 कल्पाभावान्निर्विकल्पः स्वातिरिक्ताख्यासामान्याभावान्निराख्यातः  
 देदीप्यमानत्वादेवः यत्र विद्यापदे सूरयो न रमते तन्नारमविद्यापदत-  
 त्कार्यजातं तदपवादस्यायनमधिष्ठानं नारायण उच्यते स एक  
 एव तस्य द्वितीयो न कश्चिदस्ति ॥ १२ ॥ स्वदृष्ट्यनुभूतनिर्विशे-  
 षरूपेण चक्षुरादिमस्तकांतकरणावयवविरलः सविशेषविराटरूपेण  
 समष्टिप्राणिचक्षुरादिमस्तकांतकरणावयवविदूदृश्यते वस्तुतः  
 स्वारोपितातन्निरासकविद्यामात्रैकसंश्रयो विद्यारूपः स्वातिरिक्तमा-  
 नमेयाभावाद्धिद्याश्रयत्वं विद्यारूपत्वं चोपपद्यत इत्यर्थः ॥ १३ ॥ दिवि  
 स्वे महिम्नि भवतीति दिव्यः सर्वमूर्तिवर्जितत्वादमूर्तः स्वकार्य  
 पूरणात् पूरुषः स्वव्याप्यप्रपंचबाह्यांतरेण सह वर्तत इति सबाह्या-  
 भ्यन्तरः अजरामृतस्वरूपत्वादजः हि शब्दः सापेक्षाजत्वव्यापकत्व-  
 निरासकः क्रियाज्ञानेच्छाशक्त्यात्मकप्राणपंचकांतः करणचतुष्ट-  
 याभावादप्राणो ह्यमनाः प्रकाशमात्ररूपत्वाच्छुभ्रः सप्तप्रपंचा-



रोपाधारादक्षरादीश्वरात्परः जरापवादाधारः स साक्षी तस्मादपि  
परः परमात्मेत्यर्थः ॥ १४ ॥

अप्राणोह्यमनाः शुभ्रोह्यचरात्परतः परः ॥ १५ ॥

अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्योविभुस्मृतः ॥ १६ ॥

अपूर्वोऽनंतरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः ॥ १७ ॥

अमात्रोऽनंतमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ॥ १८ ॥

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ १९ ॥

सर्वसंकल्पपरहितः सर्वनादमयः शिवः ॥ २० ॥

सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानंदमयः परः ॥ २१ ॥

( टीका ) विश्वविराडीशादिभावानां द्वैतवद्भानेऽपि तदपवा-  
दाधारो देवस्तुर्योविभुरद्वैत इति स्मृतः ॥ १६ ॥ स्वतोऽन्यकारणाभा-  
वादपूर्वः तथाकार्याभावादनंतरः स्वब्रह्मपदार्थाभावादबाह्यः स्वप-  
रस्त्वभावादनपरः नित्यत्वादव्ययः प्रणवः परमात्मावशिष्यत  
इत्यर्थः ॥ १७ ॥ अकारादिमात्राभावादमात्रः पराभिधानानंतमा-  
त्ररूपत्वादनंतमात्रः अभिधानाभिधेयरूपाशिवद्वैतस्योपशमः तद-  
रूपशमाधारः शिवः परमात्मेत्यर्थः ॥ १८ ॥ ईश्वरात्मना नि-  
खिलकर्मफलप्रदत्वात्कर्माध्यक्षः सर्वांतर्यामिरूपत्वात्सर्वभूताधिवा-  
सः सर्वप्रत्यग्रूपत्वात्साक्षी स्वसाक्षरसामान्यं चेतयतीति साक्ष्येव  
चेता प्रत्यक्केवलशेषविशेषरहितः गुणत्रयाभावान्निर्गुणः च  
शब्दोन्निष्पतियोगिकनिर्गुणत्वद्योतकः ॥ १९ ॥ मनःकरणाभा-  
वात्सर्वसंकल्पपरहितः चिदित्यादिप्रणवनादांतमयत्वात् वस्तुतस्त्वयं  
शिव एवेत्यर्थः ॥ २० ॥ सर्वाचिद्धिवर्जितचिन्मात्रः परमात्मा सर्व-  
दानंदमयजीवक्रोड्यभेदात्सर्वानंदमयः वस्तुतः परमात्मा तूलांतःक-  
रणाविद्याकल्पितजगज्जीवेशसाक्ष्यंतसर्वानुभवनिर्मुक्तः देहादि-



साक्ष्यंतसर्वध्यानविवर्जितः विश्वविश्वाद्यविकल्पानुज्ञैकरसान्तमात्मा  
तदुपाधिजातमनात्मा तयोः सत्यासत्यधिया निश्चयोविवेकः आदि-  
शब्देनाविद्याद्वयमुच्यते तयोरात्मानात्मनोः स्वज्ञस्वाज्ञदृष्टिभ्यां  
भेदाभेदौ स्त इत्यादिमोहवर्जितः महावाक्यजातस्य प्रत्यक्परैक्यमि-  
त्यर्थः तादृशैक्यवृत्तितोदूरः ब्रह्माहमस्मीति वृत्तितोप्यतिदूरः त-  
त्त्वमसीति महावाक्यपदार्थवाक्यार्थगतहेयांशासंभवज्ञानसिद्धत्वेन  
पदवाक्यार्थविरलत्वात् तच्छब्दवर्ज्यस्त्वं शब्दहीनोवाक्यार्थवर्जि-  
तोनिर्विशेषः परमात्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥

सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ॥ २२ ॥

आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः ॥ २३ ॥

महावाक्यार्थतोदूरोब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ॥ २४ ॥

तच्छब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनोवाक्यार्थवर्जितः ॥ २५ ॥

क्षराक्षरविहीनोयोनादांतज्योतिरेव सः ॥ २६ ॥

अखण्डैकरसोबाह्यमानन्दोऽस्मीति वर्जितः ॥ २७ ॥

दृश्यदर्शननिर्मुक्तः केवलामलरूपवान् ॥ २८ ॥

नित्योदितोनिराभासोद्रष्टा साक्षी चिदात्मकः ॥ २९ ॥

स एव विदितादन्यस्तथैवाविदितादपि ॥ ३० ॥

साक्षात्तिकपुल्लिङ्गस्वरूपवाक्यानि त्रिंशत् ॥

अथ साक्षात्तिकस्त्रीलिंगस्वरूपमहावाक्यानि लि-  
ख्यन्ते । अलौकिकपरमानन्दलक्षणाखण्डामिततेजो-  
राशिः ॥ १ ॥

( टीका ) ॥ २१ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ यः क्षरः प्रपञ्चस्तदारो-  
पाधारोक्षरईश्वर इति त्रिभागहीनोभवति सोऽयं ब्रह्म प्रणवना-  
दांतर्विद्योतमानतुर्यतुर्यज्योतिर्भवतीत्यर्थः ॥ २६ ॥ एवमाकारक-  
सत्त्ववृत्तेरपि मायिकत्वात्तद्वर्जितत्वं गुज्यत इत्यर्थः ॥ २७ ॥



दृश्यं घटादि तद्विषयज्ञानं दर्शनं तद्विनिर्मुक्तः केवलनिर्विशेषतया निर्मल इत्यर्थः ॥ १८ ॥ यस्त्वमात्रत्वेन नित्योदितः निराभासः सदयास्तमयाभासभावात् जीवरूपेण व्यष्टिप्रपञ्चद्रष्टा ईश्वररूपेण समष्टिप्रपञ्चसाक्षी वस्तुतश्चिदात्मकश्चिन्मात्रोभवति स एव स्वाविद्यापदस्थूलसूक्ष्मबीजप्रपञ्चाद्विदितादन्यः तथैव तदर्थमात्राप्रपञ्चाद्विदितादप्यन्यः स्वातःकरणवेद्यावेद्यकलनाभावात् तदन्यत्वमुपपद्यत इत्यर्थः ॥ ३० ॥ आहत्यवाक्यसंख्या एकषष्ठ्यधिकषट्शतम् ॥ ६६१ ॥ पुष्टिगस्वरूपविवरणं संपूर्णम् ॥ ॐ अथ साद्धांतिक-स्त्रीलिङ्गस्वरूपमहावाक्यानि लिख्यन्ते अलौकिकेत्यादि । या अलौकिकपरमानन्दलक्षणा सेयं चिदखंडामिततेजोराशिरूपिणी पूर्णबोधात्मिका भवति ॥ १ ॥

भावाभावकलाविनिर्मुक्ता चिद्विद्या द्वितीयब्रह्मसं-  
वित्तिः सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी बहिरंतरनुप्र-  
विश्य स्वयमेकेव विभाति ॥ २ ॥ सर्वसंकल्परहिता सर्व-  
संज्ञाविवर्जिता ॥ ३ ॥ सैषा चिदविनाशात्मा स्वात्मे-  
त्यादिकृताभिधा ॥ ४ ॥ आकाशशतभागाच्छा जेषु नि-  
ष्कलरूपिणी ॥ ५ ॥ नास्तमेति नचोदेति नोत्तिष्ठति न-  
तिष्ठति ॥ ६ ॥ नचयाति नचायाति नत्तनेह नचेहचित् ॥ ७ ॥  
सैषा चिदमलाकारा निर्विकल्पा निरास्पदा ॥ ८ ॥

( टीका ) श्रोत्रादिग्राह्यशब्दादिभावकला मन आदिग्राह्यसं-  
कल्पादिरभावकला तदभयनिर्मुक्ता मूर्तामूर्तविलक्षणात्वात्  
चिदस्मीति वेदनीयत्वाच्चिद्विद्या अद्वितीयत्वेनोपबृंहणात् ब्रह्म-  
विद्वरिष्ठैः संवेदनीयस्वरूपत्वादद्वितीयब्रह्मसंवेत्तिः संचिन्मात्र-  
स्वरूपत्वादिदं सद्यत्यादिसच्चिदानन्दलहरीपूर्णप्रवाहरूपिणी भू-  
र्भुवः स्वरिति त्रिपुरोपलक्षितानंतकोटिब्रह्मांडान्यधिष्ठाय या



शोभते सा महती च सा त्रिपुरसुंदरी च महात्रिपुरसुंदरीत्यत्र प्राजाप-  
त्यवैष्णवं विलयकारणं रूपमाश्रित्य भूर्भुवः स्वः त्रीणि त्रिपुराणि  
या व्याप्नोति सैवेयं भगवती त्रिपुरेति व्यापद्यत इति श्रुतेः सेयं  
त्रिपुरासुन्दर्यनंतकोटिब्रह्मांडानामन्तर्याम्यधिष्ठानात्मना बहिरंतरनु-  
प्रविश्य वर्त्तते वस्तुतस्तु स्वावशेषतया सर्वं ग्रसित्वा स्वयमेकैव  
विभाति स्वस्वाग्रद्वितीयत्वादित्यर्थः ॥ २ ॥ अंतःकरणावृत्तिजा-  
ताभावाद्या नानाविधसंकल्पविविधसंज्ञाजातविवर्जिता भवति सैषा  
चिदहमात्मा मत्तः किञ्चिन्न विद्यत इति स्वात्मेत्यादिकृताभिदासती  
निरवयवाकाशादपि शतभागाच्छाचिन्मात्ररूपत्वात् शेषे ब्रह्मा-  
त्मविद्वरिष्ठेषु प्राणादिनामांतषोडशकलाभावात् निष्कलरूपिणी  
कालत्रयेऽप्यविनाशात्माऽवशिष्यते स्वस्यासत्तासामान्यरूपत्वात् ॥  
३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ चित्तसकलत्वेनोदयास्तमयौ स्यातामित्यत आह  
नेति निर्विशेषब्रह्मरूपिणी चित्सूर्यादिवदुदयास्तमयादिविकृति  
नेति मूर्त्तामूर्त्तविलक्षणत्वेन निर्विकारत्वात् सैषा चित्प्रत्यगभिन्न-  
ब्रह्मरूपेणामलाकारा संकल्पाभावान्निर्विकल्पा स्वातिरिक्ताधि-  
ष्ठेयाभावान्निरास्पदा निरधिष्ठानतयावशिष्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

महाच्चिदेकैवेहास्ति महासत्तेति चोच्यते ॥ ६ ॥

निष्कलंका सभाशुद्धा निरहंकाररूपिणी ॥ १० ॥

सकृद्विमाता विमला नित्योदयवती सभा ॥ ११ ॥

सा ब्रह्मपरमात्मेति नामभिः परिगीयते ॥ १२ ॥

सार्द्धातिकस्त्रीलिंगस्वरूपवाक्यानि द्वादश ॥ १३ ॥

अथ सार्द्धातिकपुंसुकलिंगस्वरूपवाक्यानि अन्य-  
देवतद्विदितादयोऽविदितादधि ॥ १ ॥ यत्तद्वेश्यमग्रा-  
ह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् ॥ २ ॥

( टीका ) या महासत्तेति स्वेतरासहसत्तासामान्यरूपिणीति



गीयते या महती च साचिच्चेति महाचिदेकैवेहास्ति परमाद्यरूपत्वात्  
 यानिष्कलंकेत्यादिविशेषणविशिष्टा माया कलंकाभावाभिष्कलंका  
 तूलाविद्या कृतविषमा शुद्धाहंकाराभावात्समा शुद्धा निरहंकाररूपिणी  
 सदाद्यावृत्तित्रयशून्यतया सकृद्विभाता सदाविभातेत्यर्थः अत एव  
 विमला चिन्मात्रत्वात्स्वमात्रतया नित्योदयवती सैव चिद्ब्रह्म विद्व-  
 रिष्ठैर्नविशेषं ब्रह्मेति निष्प्रतियोगिकपरमात्मेति च नामभिः सदा  
 गीयते कथ्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ आहत्य  
 वाक्यानि त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम् ॥ ६७३ ॥ स्त्रीलिंगस्वरूपमहावा-  
 क्यविवरणसंपूर्णम् ॥ १३ ॥ अथ साद्धांतिकनपुंसकलिंगस्वरूपवा-  
 क्यानयुच्यते अन्यदेवेत्यादिना बौद्धमीमांसकादिभिर्यदेहत्वेन  
 देहातिरिक्तजीवत्वेन जगज्जीवेशभेदवद्वैतत्वेन च विदितात् ब्रह्म-  
 मयादेव अथो विदितं ब्रह्मेति चेत्तत्राह अथो इति अथ शब्दो विकल्पार्थः  
 व्यष्टिसमष्टितुर्ययोर्बौद्धादिभिरविदितत्वादविदितं ब्रह्मेति यदि  
 तदा जगज्जीवेशादिवदात्मावरणभेदप्रतीत्यवास्तवत्वसाध्यात् विदि-  
 तविपरीतात् तुरीयादप्यधि अन्यदित्यर्थः ब्रह्मणस्तुरीयातीतत्वा-  
 दित्यर्थः ॥ १ ॥ अचाक्षुषत्वाद्यदद्रेश्यमदृश्यमनिदं वस्तुत्वादग्राह्यं-  
 स्थूलदेहविलक्षणत्वादगोत्रमवर्णं ज्ञानकर्माद्रियातीतत्वादचक्षुःश्रोत्रं  
 तदपाणिपादं ब्रह्मणोनिरवयवत्वेन शरीराभ्रयातीतत्वात् ॥ २ ॥

सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ ३ ॥

अस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमो-  
 वाय्वनाकाशमसंगमरसमंगधमचक्षुष्कमश्रोत्रमब्राह्मणमो-  
 स्तेजस्कमप्राणममुखममात्रमनंतरुमबाह्यम् ॥ ४ ॥ नित्यं  
 शुद्धं मुक्तं सत्यं सुद्धमं परिपूर्णमद्वयं सदानन्दचिन्मात्रं  
 पुरतः सुविभातमद्वैतमचित्यमजिह्वं स्वप्रकाशमानन्द-  
 घनम् ॥ ५ ॥



( टीका ) हेसौम्य श्वेतकेतो इदमाविद्यकं सद्धिकल्पितं जगत्  
 अग्रे सृष्टेः पुरा सृष्टिस्थितिलयानंतरमपि सदेव जगतः सद-  
 तिरिक्तसत्ताभावात् यत् व्यक्ताव्यक्तजगद्भावं तर्त्तिक सजातीयवि-  
 जातीयस्वगतभेदवदित्यत्राह एकशब्दः सजातीयभेदनिरासकः  
 ब्रह्मांतराभावात् एवकाराविजातीयभेदनिरासकः गोमहिष्यादि-  
 बद्धिजातीयाभावात् अद्धितीयशब्दस्तु स्वगतभेदनिरासकः ब्रह्म-  
 णोनिर्विशेषत्वेन नखकेशादिवत्स्वगतभेदवैरल्यात् सत्स्वमात्रमेवे-  
 त्यर्थः ॥ ३ ॥ बुद्धेरपि सूक्ष्मत्वादस्थूलं स्वादपि बृहत्त्वादनशु नि-  
 ष्परिमाणत्वादह्रस्वमदीर्घं रज आदिगुणत्रयाभावादलोहितं द्रव-  
 त्वाभावादस्नेहं अमूर्त्तत्वादच्छायं आविद्यकमोहाभावादतमः अभू-  
 तभौतिकत्वादवाय्वनाकाशं अरसमगंधमतेजस्कं स्वसज्जनीयस्वावि-  
 द्याहयाभावादसंगं ज्ञानकर्मेन्द्रियाभावादचक्षुष्कमश्रोत्रमवाक् अतः  
 करणाभावादमनः पंचमाश्रोत्रप्राणाभावादप्राणं निरवयवत्वादमुखं  
 अपरिच्छिन्नत्वादमात्रं अंतर्बाह्यकलनाभावादनंतरमबाह्यम् ॥ ४ ॥  
 सर्वस्मात्पुरतः स्वेनैव भातत्वात्सुविभातं सूर्यादिभिरभातत्वादवि-  
 भातं अनिर्वचनीयत्वादचित्यं वेदांतेतरस्वगमकलिङ्गाभावादलिङ्गं  
 विशिष्टपदान्युक्तार्थानि ॥ ५ ॥

एतदध्यशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगंधमव्यक्तमदातव्य-  
 मगंतव्यमपि सर्जयितव्यमनानन्दयितव्यममंतव्यमबो-  
 द्धव्यमनहंकर्तयितव्यमचेतयितव्यमप्राणयितव्यमपान-  
 यितव्यमव्यानयितव्यमनुदानयितव्यमसमानयितव्यम-  
 निद्रियमविषयमकरणमलक्षणमसंगमगुणमविक्रियम-  
 व्यपदेश्यमसत्त्वमरजस्कमतमस्कममायमभयमप्यौपनि-  
 षदमेव सुविभातं सकृद्विभातं पुरतोऽस्मात्सुविभातम-  
 द्धयम् ॥ ६ ॥ अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं निरति-  
 शयानन्दलक्षणं परमाकाशम् ॥ ७ ॥



( टीका ) एतत्प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मपञ्चतन्मात्राभावात् ज्ञानेन्द्रिय-  
विषयाभावाच्चाशब्दमित्यादिकर्मेन्द्रियविषयाभावात् ज्ञानेन्द्रियविषया-  
भावाच्चाशब्दमित्यादिकर्मेन्द्रियविषयाभावादव्यक्तमित्यादिमन आ-  
द्यन्तःकरणाविषयाभावादमन्तव्यमित्यादिप्राणापञ्चकविषयाभावादमा-  
णयितव्यमित्यादिश्रोत्रादिदर्शेन्द्रियाभावादनिन्द्रियं तद्विषयं तद्विषय-  
सामान्याभावादविषयं मनआद्यन्तःकरणाभावादकरणं स्वातिरि-  
क्तलक्षणाभावादलक्षणां सज्जनीयाभावादसङ्गं गुणसाध्याभावाद-  
गुणं कर्तव्याभावादविक्रियं निर्विशेषत्वादव्यपदेश्यं सत्त्वादिगुण-  
त्रयाभावादसत्यमित्यादिनिर्मायत्वादमायं अद्वयत्वादभयं स्वरोपि-  
तातन्निरासतः उपनिषदेकवेद्यत्वादौपनिषदं निरावृत्तत्वात्सकृद्विभातं  
सर्वस्मादस्मात्स्वातिरिक्तविषयगोचरवृत्तिसमूहादपि पुरतः पूर्वमेव  
प्रत्यग्रूपेण सुविभातमद्वयं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ ६ ॥ अवाङ्मनसगोचर-  
ब्रह्मरूपेण ज्वलतीत्यनिर्वचनीयज्योतिः व्याप्यसत्त्वेनैतत्सर्वव्यापकं  
भूमानन्दतया लक्षणीयत्वाच्चिरतिशयानन्दलक्षणां भूताकाशकार-  
णत्वात् परमाकाशं चिदाकाशमित्यर्थः ॥ ७ ॥

तद्ब्रह्मतापत्रयातीतं षष्ठदोशविनिर्मुक्तं बहुमिव-  
र्जितं पञ्चकोशातीतं बहुभावविकारशून्यमेवमादिसर्व-  
विलक्षणम् ॥ ८ ॥ निर्गुणं निरुपपन्नं ज्योतिराभ्यन्तरं  
सर्वमायातीतमप्रत्यगेकरसमद्वितीयम् ॥ ९ ॥ तज्ज्योति-  
रेकमद्वितीयं सर्वकल्पनातीतं ध्रुवमचरमेकं सदाच-  
कास्ति साच्चिदानन्दम् ॥ १० ॥ यत्तत्सत्यं विज्ञानमा-  
नन्दनिष्क्रियं निरञ्जनं सर्वगतं सुसूक्ष्मं सर्वतोमुखम-  
निर्देश्यममृतं निष्कलम् ॥ ११ ॥ एकमद्वैतनिष्कलं  
निष्क्रियं शान्तं निरतिशयमनामयमद्वैतं चतुर्थं ब्रह्मवि-  
ष्णुरुद्रातीतमेकमाशास्यम् ॥ १२ ॥



( टीका ) तत्पदलक्ष्यं ब्रह्माध्यात्मिकादितापत्रयातीतं आत्मानं  
 देहमधिकृत्य भवतीत्यध्यात्मं शिरोरोगादिभूतपंचकतत्कार्यमधिकृत्य  
 भवतीत्यादिभौतिकं वर्षातपादिदिग्वातादिकरणदैवमधिकृत्य भवती-  
 त्याधिदैविकं कर्णाक्षिरोगादि षट्कोशविनिर्मुक्तं त्वगाद्यभावात्  
 त्वद्युधिरमांसमेदोमज्जास्थीनि षट्कोशाः अशनाद्यभावात् षडूर्मि-  
 वर्जितं अशनायापिपासाशोकमोहजरामरणानीति षडूर्मयः अन्नमया-  
 द्यभावात्पंचकोशातीतं अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानंदमयाः  
 पंचकोशाः जायतेऽस्तीत्यादिविकाराभावात्षड्भावविकारशून्य एव-  
 मादिसर्वविलक्षणं आदिशब्देन पंचदोषादिवर्जितमिति द्योत्यते  
 ॥ ८ ॥ स्थूलशरीराभावान्निरूपप्लवं निरूपद्रवं यद्वा जाग्रज्जा-  
 ग्रदादिपंचदशावस्थाऽगाधसागरे विश्वविश्वाद्यविकल्पानुज्ञैकरसांत-  
 रूपेण प्लवते ननिमज्जतीत्युपप्लवोविश्वादिस्तद्गतहेयांशाभावादु-  
 पप्लवातीतं अतिप्रकाशादाभ्यंतरं ज्योतिः माया तत्कार्यसत्त्वे  
 सर्वमायातीतं स्वातिरिक्तप्रत्यग्रसाभावादप्रत्यगेकरसं प्रत्यगभिन्नत्वात्  
 ॥ ९ ॥ स्वातिरिक्तकल्पकजीवजाताभावात्सर्वकल्पनातीतं सन्मात्र-  
 त्वादध्रुवं सच्चिदानंदमक्षरं ब्रह्म सदा चकास्ति प्रकाशत इत्यर्थः  
 ॥ १० ॥ कालत्रयावाध्यत्वाद्यत्तत्सत्यं विज्ञप्तिमात्रत्वाद्धिज्ञानं  
 सर्वव्यापकत्वात्सर्वगतं केशकोट्यंशैकभागादपि सुसूक्ष्मं वैराजत्वा-  
 त्सर्वतोमुखं स्वातिरेकेण निर्देष्टुमशक्यत्वादनिर्देश्यम् ॥ ११ ॥  
 निर्विशेषत्वाभिरतिशयं ग्रामयाद्यदेहाभावादनामयं तुर्यरूपत्वा-  
 द्ब्रह्मविष्णुरुद्रातीतं ब्रह्मादिभिरप्याशास्यमानमद्वैतमेकमवशिष्यते  
 ॥ १२ ॥

अद्वयमनाद्यंतमशेषवेदवेदांनवेद्यमनिर्देश्यमनिरु-  
 क्तमप्रच्यवमाशास्यमद्वैतं चतुर्थं सर्वाधारमनाधारमनि-  
 रीक्ष्यम् ॥ १३ ॥



अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसजित्यमगन्धवचयत् १४  
परं विज्ञानाद्यद्वारिष्ठं प्रजानां यदचिन्मद्यदणुभ्योऽणु च १५  
बृहच्च तद्विव्यमचित्यरूपं सूक्ष्माच्चतत्सूक्ष्मतरं विभाति १६  
एतत् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि  
किञ्चित् ॥ १७ ॥

अघोषमव्यंजनमस्वरं च यत्तालुकंठोष्ठमनासिकं च यत्  
अरेफजातमुभयोष्मवर्जितं यदक्षरज्ञ चरते कथञ्चित् १८

( टीका ) उत्पत्तिप्रलयाभावादनाद्यनंतं ब्रह्मेन्द्रादिरूपेण  
स्वेनैव रूपेण च अशेषवेदवेदांतवेद्यं बीजाज्ञानाभावादनिरुक्तं  
कदापि स्वमात्रतोऽच्युतत्वादप्रच्यवं स्वाज्ञद्वष्टिविकल्पितसर्वमपंचतत्वे  
तत्सर्वाधारं वस्तुतस्त्वेनाधारं ब्रह्माहमस्मीति भावनां विना अनि-  
रीक्ष्यम् ॥ १३ ॥ व्ययवद्वियदादिपंचभूततत्कार्याभावाद्यदव्ययं  
ब्रह्माशब्दमित्यादिविशेषणवेधितं यत्प्रजानां तमआदिगुविशिष्टानां  
स्वाज्ञानानुरोधेन स्वातिरिक्तवस्तुविषयकविज्ञानात्परं वरिष्ठं ज्ञप्ति-  
मात्रत्वाद्यच्चंद्रसूर्यादेरप्यचिन्मत्स्वयं प्रकाशत्वात् यदणुरूपबुद्धि-  
वृत्तिभ्यो अणुच खादेरपि बृहच्च यत् तदचिन्त्यरूपं ब्रह्म दिवि  
स्वे महिम्नि भवतीति दिव्यं स्वप्रष्ठान्तराभावात् । स्तम्भादिसूक्ष्म  
जन्तुपर्यन्तं निर्विशेषतया सूक्ष्मपर्यन्तं विभाति प्रत्यगभिन्नब्रह्मरूपेण  
नित्यमेवात्मसंस्थमेतन्निर्विशेषब्रह्मैव स्वमात्रमिति ज्ञेयं नातः परं  
वेदितव्यं किञ्चिदप्यस्ति तस्य निष्पत्तियोगिकस्वमात्रत्वात् ॥ १७ ॥  
यत्परमाक्षरं ब्रह्म प्रयत्नविशेषाभावादघोषं हलसंज्ञिकवर्णाभावा-  
दव्यञ्जनं अकारादिस्वराभावादस्वरं शर्षसहादिप्रयत्नाभावादुभयो-  
ष्मवर्जितं रादिप्रत्याहाराभावादरेफजातं वाक्कंठतालवोष्ठविकारै-  
र्यन्नचरते तत्परमाक्षररूपेणावशिष्यत इत्यर्थः ॥ १८ ॥ १९ ॥

१ शषसहा ऊष्माणः वर्गे वर्गे प्रथमाववोषो युग्मो सोष्माणवनुना-  
सिकोन्त्य इति प्रातिशाख्योक्तेस्त्रिविधाऊष्माणः ।



अगोचरं मनोवाचामवधूतादिसंप्लवम् ॥ २० ॥

सत्तामान्नप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥ २१ ॥

अहेयमनुपादेयमसामान्यविशेषणम् ॥ २२ ॥

ध्रुवं स्थितमितगंभीरवतेजोन तमस्ततम् ॥ २३ ॥

निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतन्निरामयम् ॥ २४ ॥

नशून्यं नापि चाकारि नदृश्यन्नापि दर्शनम् ॥ २५ ॥

चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम् ॥ २६ ॥

चैत्यानुपातरहितं सामान्येन च सर्वगम् ॥ २७ ॥

अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ॥ २८ ॥

मनोवाचोभिरग्राह्यं पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम् ॥ ३० ॥

( टीका ) वागादिकरणाविषयत्वान्मनोवाचामगोचरं तत्के-  
नासादितुं शक्यमित्यत्र अवधूतादिकुटीचकांतानां स्वातिरिक्तसंसार-  
सागरसंतारणदृढसंप्लवं कितव अस्त्वाप्रपंचापवादाधारमत्यगभि-  
न्नसत्तामान्नब्रह्माहमस्मीति प्रकाशोबोधस्तत्प्रकाशकतयैकप्रकाशं  
स्वमात्रभावेनां विना स्वातिरिक्तभावनातिगम् ॥ २० ॥ हेयरूपगु-  
णात्रयाभावादहेयं उपादेयगुणासाम्याभावादनुपादेयं अमूर्तं सामान्यं  
मूर्तं विशेषरूपं स्रुदुभयवर्जितमसामान्यविशेषणं कूटस्थत्वाद्ध्रुवं  
निस्तरंगचिदब्धित्वात्स्थितमितगंभीरं सर्वव्यापकत्वात् ततं भूतभौति-  
कतेजस्तमोविलक्षणत्वान्नतेजोन तमः कितस्स्वाज्ञविकल्पितसर्वसत्त्वे  
सर्वातीतं निष्कलं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ बीजाज्ञाना-  
भावान्नशून्यं तद्विकल्पितनामरूपप्रपंचाभावान्नापि चाकारि विषय-  
विषयिज्ञानाभावान्न दृश्यं नापि दर्शनं चेतोभवं चैत्यं तत्कलना-  
रहितं चिन्मात्रं विशेषणसामान्येन वा सर्वगतमपि चैत्यसंबन्धविरलं  
स्वातिरिक्ताभासाभावादनाभासनामरूपवत्कार्याभावादनानामकमकारणं



पूर्णादाकाशादपि पूर्णं आकाशादिव्यापकत्वात् सातिशयसुखादपि  
सुखं ब्रह्मसुखस्य निरतिशयत्वात् यत्पदं दृष्ट्यादित्रिपुटी विरलं  
तादिदं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ ३१ ॥

अप्रमाणाभिर्द्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम् ॥ ३२ ॥

निरलेपकं निरापायं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

सद्गुणं चिद्गुणं नित्यमानन्दगुणमव्ययम् ॥ ३४ ॥

प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ३५ ॥

अहेयमनुपादेयमनादेयमनाश्रयम् ॥ ३६ ॥

शुद्धं बुद्धं सदा मुक्तमनामकमरूपकम् ॥ ३७ ॥

संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते तु चित्ते संसारमोहमि-  
हिका गलिता भवन्ति ॥ ३८ ॥

स्वच्छं विभाति शरदीव स्वभागतायां चिन्मात्रमे-  
कमजमाद्यमनन्तमन्तः ॥ ३९ ॥

साध्यातिकनपुंसकालिङ्गस्वरूपवाक्यान्येकोनचत्वारिंशत् ॥ ४० ॥

( टीका ) प्रत्यक्षादिप्रमाणागम्यत्वादप्रमाणां स्वातिरिक्तप्रमे-  
याभावादप्रमेयं इन्द्रियागम्यत्वादतीन्द्रियं स्वाविद्या तत्कार्यलेपाभा-  
वाभिलेपकं नित्यत्वानिरापायं प्रत्यगभिन्नत्वात्प्रत्यगेकरसं विराट्-  
त्वाद्विश्वतोमुखं स्वाधेयाधाराभावाभिराधेयं अनाश्रयं नामरूपक-  
लनाभावादनामकमरूपकं स्वाविद्यातत्कार्याभावात्सदामुक्तमेवेत्यर्थः  
॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ संक-  
ल्पाभावान्मनोऽपि नाशमेति तत्कार्यसंसारमोहनीहारोऽपि विलीयते  
शरदागतायां यथा खं स्वच्छं विभाति तथा स्वातर्हृदये निर्विशेष-  
तयाऽद्यं चिन्मात्रं स्वच्छं विभाति इत्यर्थः ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥



आहत्य वाक्यानि सप्तशतं नपुंसकलिङ्गप्रकरणां संपूर्यम् ॥ अथ  
सार्द्धांतिकात्मस्वरूपमहावाक्यानि लिख्यन्ते आकाश इत्यादिना  
आ समन्तात्काशत इत्याकाशः नामचिदातुः स्वात्मस्थजगद्धीजभूत-  
नामरूपयोर्निर्वहिता तदाधारत्वात् ।

अथ सार्द्धांतिकात्मस्वरूपवाक्यानि आकाशोह वै  
नामनामरूपयोर्निर्वहिताते यदंतरा तद्ब्रह्म तदमृतं स  
आत्मा ॥ १ ॥ इदं सर्वं यदयमात्मा ॥ २ ॥ चिदेकर-  
सोऽह्यमात्मा ॥ ३ ॥ अतोऽह्यमात्मा ॥ ४ ॥ अनुज्ञाता-  
ह्यमात्मा ॥ ५ ॥ अनुज्ञैकरसोऽह्यमात्मा ॥ ६ ॥ अवि-  
कल्पोऽह्यमात्मा ॥ ७ ॥ देहादेः परतरत्वाद्ब्रह्मैव परमा-  
त्मा ॥ ८ ॥ अखंडैकरसोऽह्यमात्मा ॥ ९ ॥ निर्गुणः  
साक्षीभूतो निष्क्रियो निरवयवात्मा ॥ १० ॥ विरजः पर  
आकाशादज आत्मा महान् शुभः ॥ ११ ॥

( टीका ) ते नामरूपे यदंतरा यन्मध्ये रज्जुसर्पवद्विक-  
ल्पिते स्वयमसद्रूपे अपि तत्सतया सत्यवदेव भाते तदारोपापवा-  
दाधिकरणं यत्तद्ब्रह्म तस्यैव मुक्तिरूपत्वात् तदेवामृतं तस्यैव  
प्रत्यग्रूपेण कामादिनृत्यवभासकत्वात्स एव निष्प्रतियोगिकात्मेत्य-  
र्थः ॥ १ ॥ स्वाज्ञादृष्टिविकल्पितं यदिदं परिदृश्यमानं सर्वं जगत्  
तदपवादास्पदशृङ्खला चिदेकरसोऽयमात्मादिः ॥ २ ॥ ३ ॥ व्य-  
ष्टिसमष्टिविश्वविराडैक्यनिष्पन्नात्मातोहि स्थूलप्रपंचव्यापकत्वात्  
तैजससूत्रैक्यानुज्ञां ददातीत्यर्थमात्मानुज्ञाताहि प्राज्ञबीजात्मनोरैक्या-  
नुज्ञां दत्वा तदेकरसरूपेण शिविराजते सोऽयमात्मानुज्ञैकरसोहि  
स्थूलसूक्ष्मबीजप्रपंचव्यष्टिसमष्टिविकल्पग्रासतुर्ययोरैक्यनिष्पन्नोऽय-  
मात्मा अविकल्पोहि सदा निर्विकल्पत्वादित्यर्थः ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥  
व्यष्टिसमष्टिदेहादिभावमापन्नपिंडांडब्रह्मांडयोः परतरत्वात् परत्वे-



नोपबृंहणात् ब्रह्मैव परमात्मा ॥ ८ ॥ अयमात्मा निष्प्रतियोगि-  
काखंडानन्दरसोहि स्वाज्ञदृष्टिविकल्पितगुणत्रयविजृम्भितविक्रिया-  
वत्सावयवरूपसाक्ष्यसत्त्वे स्वदृष्ट्या निर्गुणः सर्वसाक्षीभूतः सदा  
निष्क्रियोव्योमवन्निरवयवात्मा भवति ॥ १० ॥ रजआदिगुणत्र-  
याभावाद्विरजः स्वच्छः निरवयवाकाशादपि परः तदपवादाधार-  
त्वात् महानपरिच्छिन्नः ध्रुवनित्यः ॥ ११ ॥

एकोदेवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥ १२ ॥

निःशब्दं परमं ब्रह्म परमात्मासमीर्यते ॥ १३ ॥

सकले निष्कले भावे सर्वत्रात्मा व्यवस्थितः ॥ १४ ॥

सर्वदा सर्वकृत्सर्वः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ १५ ॥

अनाद्यन्तावभासात्मा परमात्मेह विद्यते ॥ १६ ॥

नित्यः सर्वगतोऽद्यात्मा कूटस्थोदोषवर्जितः ॥ १७ ॥

तत्परः परमात्मा च श्रीराजः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

सर्वकारणकार्यात्मा कार्यकारणवर्जितः ॥ १९ ॥

सर्वातीतस्वभावात्मा नादांतर्ज्योतिरेव सः ॥ २० ॥

निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ॥ २१ ॥

( टीका ) अद्वैतत्वादेकः देदीप्यमानत्वादेवः ब्रह्मादिस्वभा-

तभूतप्रत्यगपि स्वाज्ञदृष्ट्या सर्वभूतेषु गूढः व्याप्यसत्त्वे तत्सर्वव्यापी  
सर्वांतर्यामित्वेन सर्वभूतान्तरात्मा ॥ १२ ॥ शब्दगुणाकाकाशवि-  
लक्षणात्वाभिः शब्दं परमं ब्रह्मैव परमात्मोच्यते ॥ १३ ॥ स्वाज्ञ-  
दृष्टिविकल्पितसकले स्वाज्ञभक्तिस्वपदप्राप्त्युपायप्रदर्शनानंतरं ततः-  
स्वान्यस्वज्ञोभवति तद्दृष्ट्या निष्कले भावे याते सत्यथ तद्दृ-  
ष्ट्या सर्वत्र स्वान्यस्वज्ञदशायां स्वात्मैवावस्थितः द्वात्मांतरस्य  
मृग्यत्वात् ॥ १४ ॥ स्वाज्ञदृष्ट्या यः सदा सर्वं करोति स्वज्ञदृ-  
ष्ट्या सर्वः परमात्मेति कथित इत्यर्थः ॥ १५ ॥ इह संसारदशा-



यामपि आदिमध्यांतशून्यतया प्रकाशमात्रः परमात्मा विद्यते  
॥१६॥ स्वातिरिक्तप्रभवसर्वदोषवर्जित इत्यर्थः ॥ १७ ॥ योऽज्ञ-  
दृष्टिविकल्पिताकारादिकलातीतांतमागातदध्यक्षजांभवदादिसीतांत-  
भेदो विभाति स्वज्ञदृष्ट्या यं तत्परः परमात्मा च शब्दोनिष्प्रति-  
योगिकव्यापकः स्वातिरिक्ताश्रयपन्हवसिद्धमुक्तिश्रीरूपेण योरा-  
जमानोमहीयते स श्रीराम इत्यत्र स्वान्याश्रयपन्हवसिद्धा यामुक्ति-  
श्रीर्विजृम्भते तद्रूपतोरजमानसहः श्रीराम ईरितमितिस्मृतेः क्षराः  
क्षरातीतत्वात्पुरुषोत्तमः ॥१८॥ स्वाज्ञदृष्ट्या कार्यकारणवद्भास-  
मानोऽपि स्वज्ञदृष्ट्या कार्यकारणवर्जितः परमार्थदृष्ट्या सर्वातीतस्व-  
भावात्मा नानाप्रपञ्चापवादास्पदं नादः तुरीयात्मा यस्तदंतज्योतिः  
स तुरीयातीत एवेत्यर्थः ॥१९॥२०॥ विकल्पजुष्टप्रपञ्चाभावाभिर्वि-  
कल्पस्वरूपः बाह्यांतर्विक्षेपाभावात्सदा समाधिशून्यात्मा विक्षेपो-  
नास्ति यस्मान्नचसमाधिस्ततोममेतिश्रुतेः ॥२१॥

सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यांतवर्जितः ॥ २२ ॥  
प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहं ब्रह्मास्मि वर्जितः ॥ २३ ॥  
तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अथमात्मेत्यभावकः ॥ २४ ॥  
ॐकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ॥ २५ ॥  
सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः ॥ २६ ॥  
शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥ २७ ॥  
आनंदात्मा प्रियोह्यात्मा मोक्षात्मा बंधवर्जितः ॥ २८ ॥  
शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः ॥२९॥  
सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किञ्चिजगद्वयम् ॥ ३० ॥  
अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः ॥ ३१ ॥  
नामरूपविहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः ॥ ३२ ॥  
साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किञ्चित्किञ्चिन्नकिञ्चन ॥ ३३ ॥



( टीका ) नेत्रादिसर्वेन्द्रियप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्प्रज्ञानं ब्रह्मादि-  
 रूपे स्वयमेवोपबृंहणाद्ब्रह्मव्यष्टिप्रपञ्चापवादास्पदं प्रत्यगहं शब्दार्थः  
 समष्टिप्रपञ्चापवादाधारः परोब्रह्मशब्दार्थः अस्मीति शब्दस्तु तयो-  
 रैक्यबोधकः तत्पदलक्ष्यं ब्रह्म त्वंपदलक्ष्यं प्रत्यक्तयोरैक्यबोधकमसि  
 पदं अयमित्यपरोक्षार्थः प्रत्यगात्मार्थः ब्रह्मशब्दार्थः परमात्मा  
 ॐकारवाच्योविश्वविण्डीशादिः सर्ववाच्यस्तु पटघटादिः ब्रह्मणो-  
 व्यावित्थपदवाक्यार्थत्वात्प्रज्ञानादिवाक्यहीनत्वं युज्यत इत्यर्थः ॥ २३  
 ॥ २४ ॥ स्वाप्यप्रपञ्चाभावात्सर्वत्र पूर्णरूपात्मा स्वातिरिक्तेषु सत्स्व-  
 पि स्वयमेवावशेषणात् सर्वत्रात्मावशेषकः अशुद्धमायाभानाच्छुद्ध-  
 चैतन्यरूपात्मा स्वातिरिक्तसिद्धजालाभावात्सर्वत्र सिद्धिविवर्जितः  
 दुःखसामान्याभावादानन्दात्मा सर्वस्मात्प्रयोरूपादात्पैव प्रियोहि  
 बन्धवर्जनान्मोक्षात्मा, स्वातिरिक्तप्रपञ्चशून्यात्मा कार्यापेक्षया, कार-  
 णात्मना सूक्ष्मात्मा, कार्यात्मना विश्वात्मा, वस्तुतोविश्वहीनकः  
 स्वातिरिक्तप्रपञ्चसत्ताप्रदानात्सत्तामात्रस्वरूपात्मा भीहेतुद्वैताभावान्ना  
 न्यर्त्किचिज्जगद्भयं स्वस्यैव निर्भयत्वात् ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥  
 ॥ २८ ॥ ३६ ॥ ३० ॥ अणुस्थूलादिपरिमाणाभावादपरिच्छि-  
 न्नरूपात्मा सच्चिदानन्दत्वान्नामरूपविहीनात्मा ॥ ३१ ॥ ३२ ॥  
 निष्प्रतियोगिकत्वात्साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा ब्रह्मणोऽतिरिक्तं न कि-  
 चिदस्ति ॥ ३३ ॥

सुक्तासुक्तस्वरूपात्मा सुक्तासुक्तविवर्जितः ॥ ३४ ॥  
 द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः ॥ ३५ ॥  
 निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मा पुरुषात्मकः ॥ ३६ ॥  
 आत्मेतिशब्दहीनोय आत्माशब्दार्थवर्जितः ॥ ३७ ॥  
 सच्चिदानन्दहीनोय एषैवात्मा सनातनः ॥ ३८ ॥  
 यस्य किञ्चिद्बहिर्नास्ति किञ्चिदंतः कियन्नच ॥ ३९ ॥



यस्य लिङं प्रपञ्चं वा ब्रह्मैवात्मा न संशयः ॥ ४० ॥

साङ्ख्यनितिकात्मस्वरूपवाक्यानि चत्वारिंशत् अथ  
साङ्ख्यनितिकसर्वस्वरूपवाक्यानि ॐकार एवेदं सर्वम् ॥ १ ॥  
स एवाधस्तात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः  
स एवेदं सर्वम् ॥ २ ॥ अहमेवाधस्तादहमुपरिष्ठादहं पश्चादहं  
पुरस्तादहं दक्षिणत अहमुत्तरत अहमेवेदं सर्वम् ॥ ३ ॥

( टीका ) स्वज्ञस्वाज्ञदृष्ट्या मुक्तामुक्तवदद्वैतद्वैतवदास्थितोऽपि  
परमार्थदृष्ट्या मुक्तामुक्तद्वैताद्वैतकलनाविवर्जितः निर्विशेषपुराण-  
पुरुषत्वात् ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आत्मेति सच्चिदानन्द इति शब्द-  
शब्दार्थहीनो भवति स एष निष्प्रतियोगिकः परमात्मा ॥ ३७ ॥  
॥ ३८ ॥ यस्य बाह्यांतरालकलना न विद्यते स्वाज्ञदृष्टेरपि यत्स-  
द्भावे जगल्लिङ्गमाहुः कार्यावगतेः कारणावगतिपूर्वकत्वात् वस्तुतः  
कार्यकारणकलनाविरलं ब्रह्मैव सर्वप्रत्यगात्मा भवतीत्यत्र न हि संश-  
योस्तीत्यर्थः ॥ ३९ ॥ आहत्य वाक्यसंख्याचत्वारिंशोत्त-  
रसप्तशतम् ॥ ४० ॥ अथ साङ्ख्यनितिकसर्वस्वरूपवाक्यानि लिख्यन्ते  
ओमित्यादिना परिदृश्यमानमिदमभिधानाभिधेयरूपमविद्यापद-  
तत्कार्यं सर्वमोकार एव तद्गतहेयांशापाये ओंकाराग्रविद्योततुर्यतुर्य-  
मेवेत्यर्थः ॥ १ ॥ स एवाधस्तादित्यत्र तच्छब्दतस्तत्पदलक्ष्य-  
मुच्यते स ब्रह्मेति श्रुतेः अहमेवाधस्तादित्यत्राहं शब्देन त्वं पदल-  
क्ष्यमभिधीयते बुद्धेः साक्षितया स्थित्या स्फुरन्नहमितीर्यत इति  
श्रुतेः सोऽहं शब्दाभ्यां प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मोच्यते आत्मैवाधस्तादित्यत्र  
प्रत्यक्परविभागैक्या सह ब्रह्ममात्रमात्मशब्देनोच्यते अत्रत्याधोर्ध्वा-  
तरालप्रागाग्नेयादिदिक्षु च प्रसक्तभेदस्य मायिकत्वेन कारणातुल्य-  
त्वात् सर्वं ब्रह्मैवेत्यर्थः ॥ २ ॥ ३ ॥



आत्मैवावस्तादात्मोपरिष्ठादात्मापश्चादात्मापुर-  
स्तादात्माश्चिन्तित आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वम् ॥४॥  
आत्मैव वेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥५॥ एतद्ब्रह्मैव  
सर्वम् ॥६॥ नारायण एवेदं सर्वम् ॥७॥ सच्चिदानन्दरू-  
पमिदं सर्वम् ॥८॥ सत्तामात्रं हीदं सर्वम् ॥९॥ मत्स्व-  
रूपमेवेदं सर्वम् ॥ १० ॥

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ॥ ११ ॥

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ॥ १२ ॥

स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ॥ १३ ॥

मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् ॥ १४ ॥

जगन्नयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ॥ १५ ॥

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १६ ॥

यत्किञ्चिन्न किंचिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १७ ॥

अखण्डकरसं सर्वं यद्यचिन्मात्रमेव हि ॥ १८ ॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ १९ ॥

ज्ञाताचिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २० ॥

(टीका) इदं पिण्डाण्डं सर्वमात्मैव पिण्डाण्डस्य प्रत्यविकल्पितत्वात् ॥१॥ इदं ब्रह्माज्ञानविकल्पितब्रह्माण्डं सर्वं ब्रह्मैव पिण्डाण्डब्रह्माण्डगतहेयांशापाये इदमेतदुभयं परामृतं ब्रह्ममात्रमित्यर्थः नरादाविर्भूतं नारं जगत्तदारोपापनादाधारोनारायणः शिष्टं स्पष्टम् ॥ १० ॥ भूतादिकालत्रयपरिच्छेद्यं सर्वं स परमात्मैव ब्रह्मविष्णुरूद्राद्यधिष्ठितमिदं जगत्सर्वं स्वयमेव ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ यथा मर्वारोपितजलं मरुभूमात्रं तथा चिन्मात्रविकल्पितं सर्वं जगद्विचारतश्चिन्मात्रमेवेत्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ इदं किञ्चिदकिञ्चिदिति यद्यप्यवहृतं तत्सर्वं चिन्मात्रमेवेत्यर्थः ॥ २० ॥



यच्च यावच्च दूरस्थं सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २१ ॥  
 चिन्मात्रास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ॥ २२ ॥  
 आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ॥ २३ ॥  
 आत्मनोऽन्यत्तुल्यं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ॥ २४ ॥  
 सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ॥ २५ ॥  
 सर्वं च खल्विदं ब्रह्म नित्यचिद्धनमक्षतम् ॥ २६ ॥  
 समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मेदमाततम् ॥ २७ ॥  
 नत्वं नाहं नचान्यं वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ २८ ॥  
 नतदस्ति न यन्नाहं नतदस्ति नतन्मयम् ॥ २९ ॥  
 किमन्यमभिवांछामिसर्वं सच्चिन्मयं ततम् ॥ ३० ॥  
 आतिरआतिनास्त्येव सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ३१ ॥  
 नदेहो नच कर्माणि सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ३२ ॥  
 लक्षणाप्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ३३ ॥  
 जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ३४ ॥  
 ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्नहि ॥ ३५ ॥  
 ब्रह्ममात्रं घृतं सर्वं ब्रह्ममात्रं रसं सुखम् ॥ ३६ ॥  
 ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ३७ ॥  
 ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् ॥ ३८ ॥  
 सर्वं प्रशांतमजमेकमनादिमध्यमाभास्वरं स्वदन-  
 मात्र मचैत्यचिन्तम् ॥ ३९ ॥

( टीका ) विकाराभावादक्षतं यत्र संवेद्यजातं न तदस्तित्व-  
 मयमहमित्यादिविकल्पोऽपि नास्ति एतत्सर्वं चिन्मात्रमेवं स्थिते  
 स्वातिरेकेण किमन्यदस्तीत्यभिवांछामीत्यर्थः ॥ २१ ॥ २२ ॥  
 ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अत्रातिनास्त्येवेत्यत्र-  
 विसर्गलोपशब्दादसः सद्ब्रह्ममात्रं निष्पतियोगिकं तदतिरिक्तप्रसक्तौ



तत्सर्वमसदेवेत्यर्थः ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥  
 स्वातिरेकेण यद्यद्विकल्पितं तत्तत्प्रशांतं तत्कल्पकमनःप्रहाणात्  
 स्वेन रूपेणासमंताद्भासमानमभास्वरं स्वाद्यस्वादककलनावैरल्या-  
 तस्वदनमात्रं ज्ञप्तिमात्रमित्यर्थः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥  
 ॥ २८ ॥ ३९ ॥

सर्वे प्रशांतमितिशब्दमयीचदृष्टिः-

बोधार्थमेवहि मुधैव तदोमितीदम् ॥ ४० ॥

साक्षात्तिक सर्वस्वरूपवाक्यानि चत्वारिंशत् अथ  
 साक्षात्तिक ब्रह्मस्वरूपवाक्यानि सर्वे ह्येतद्ब्रह्म ॥ १ ॥  
 अयमात्मा ब्रह्म ॥ २ ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ॥ ३ ॥  
 प्रज्ञाप्रतिष्ठाप्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ४ ॥ तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपर-  
 मनंतरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः ॥ ५ ॥ विज्ञान-  
 मानन्दं ब्रह्म ॥ ६ ॥ अजरोऽमरोऽमृतोऽभयोऽब्रह्मोऽभयं वै-  
 ब्रह्म ॥ ७ ॥ सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं  
 परं ब्रह्मोम् ॥ ८ ॥ स्वयंप्रकाशः स्वयं ब्रह्म ॥ ९ ॥

( टीका ) चित्तचैत्यपन्हवादचैत्यचिन्हं निर्विशेषब्रह्मप्रबोधार्थं  
 यद्यद्विकल्पितं तदिदमोकारार्थतुर्यतुर्यमितिसर्वे प्रशांतमित्यादिशब्द-  
 मयी च दृष्टिर्मुधैव व्यर्थमेव विकल्पिता निर्विशेषब्रह्मणोऽशब्दत्वात्  
 यतोवाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेत्यादिश्रुतेः ॥ ४० ॥ आहत्य  
 वाक्यान्यशीत्यधिकसप्तशतं सर्वस्वरूपप्रकरणाविवरणां संपूर्णम् ॥  
 ॥ १६५ ॥ अथ साक्षात्तिकब्रह्मस्वरूपवाक्यानि लिख्यन्ते सर्वमि-  
 त्यादिना कालत्रयाबाध्यं सत्यं ज्ञप्तिमात्रतया भातं ज्ञानं परिच्छेद-  
 त्रयाभावादनन्तं तदेतच्छब्दवाच्यत्वंपदलक्ष्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म  
 स्वकारणाभावादपूर्वं स्वकार्याभावादनपरं स्वांतर्बाह्यकलनाभावाद-  
 नंतरमबाह्यं सर्वैर्ब्रह्मविद्धिरयमात्मा ब्रह्मेत्यनुभूतत्वात्सर्वानुभूः ॥ ५ ॥



विज्ञप्तिमात्रमखंडानन्दं अशनायादिषडूर्यभावादजरः नित्यत्वादमरः  
कैवल्यरूपत्वादमृतः अद्वैतत्वादभयः सर्वभूतानामनेकत्वेऽपि तत्त-  
त्प्रत्यक्तत्वेन स्थितमेकं नारायणरूपेण कारणपुरुषात्मकं वस्तुतत्त्व-  
कारणं परं ओंकारार्थं ब्रह्मेत्यर्थः साधनान्तरनैरपेक्षेया स्वयमेव  
प्रकाशत इति स्वयं प्रकाशः ॥ ६ ॥ १० ॥

तदेतद्वयं स्वयं प्रकाशमहानंदमात्मैवैतदभयममृ-  
तमेतद्ब्रह्म ॥ १० ॥

सदेव पुरस्तात्सिद्धं ब्रह्म ॥ ११ ॥ आकाशवत्सूक्ष्मं  
केवलसत्तामात्रस्वभावं परं ब्रह्म ॥ १२ ॥ अद्वितीय-  
मखिलोपाधिविनिर्मुक्तं तत्सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्यनन्तं  
नित्यं शिवं शांतं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं  
ब्रह्म ॥ १३ ॥ एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥ १४ ॥ सर्वदानव-  
च्छिन्नं परं ब्रह्म ॥ १५ ॥ सच्चिदानंदतेजः कूटस्थरूपं  
तारकं ब्रह्म ॥ १६ ॥ तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्यज्ञानानं-  
तानन्दपरिपूर्य सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥ १७ ॥  
चित्स्वरूपं निरंजनं परं ब्रह्म ॥ १८ ॥ तत्त्वं पदलक्ष्यं  
प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म ॥ १९ ॥ अखंडार्थपरं ब्रह्म ॥ २० ॥

( टीका ) स्वाविद्यापदतत्कार्यकल्पनायाः पुरस्तात्कालत्रये-  
ऽपि सदेव विद्यत इति सिद्धं मायाकल्पिताखिलोपाधिसत्त्वे  
तद्विनिर्मुक्तं तत्तद्भूतभौतिकनिष्ठकाठिन्यजलाहरणादिशक्तिभि-  
रुपबृंहितं तथाऽप्यनाद्यनन्तं नित्यमित्यादिवाच्यमपि वस्तुतोऽनिर्वाच्यं  
चैतन्यं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ १३ ॥ सर्वदा व्यापकत्वादनवच्छिन्नम् ॥ १४ ॥  
॥ १५ ॥ योगिभिर्धूमध्ये यत्तारकमिति लक्ष्यते तदेव सच्चिदानं-  
दतेजः कूटरूपं शुक्लतेजोमयं ब्रह्मेति श्रुतेः कदापि स्वात्मबंधाभावाच्च



नित्यमुक्तं पुरातनत्वात्सनातनं तत्त्वं पदलक्ष्यैक्यसिद्धं प्रत्यगभिन्न-  
मुच्यते खंडमाया तत्कार्याऽनर्थापन्हवसिद्धमखंडार्थं ब्रह्मेत्यर्थः २०॥

सर्वकालाबाधितं ब्रह्म ॥ २१ ॥ सगुणनिर्गुणस्वरूपं  
ब्रह्म ॥ २२ ॥ आदिसध्यान्तशून्यं ब्रह्म ॥ २३ ॥ माया-  
तीतगुणातीतं ब्रह्म ॥ २४ ॥ अनंतमप्रमेयखंडपरिपूर्णं  
ब्रह्म ॥ २५ ॥ अद्वितीयपरमानंदनित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्य-  
स्वरूपव्यापकाभिन्नपरिच्छिन्नं ब्रह्म ॥ २६ ॥ सचिदा-  
नंदस्वप्रकाशं ब्रह्म ॥ २७ ॥ मनोवाचागोचरं ब्रह्म  
॥ २८ ॥ देशतः कालतोवस्तुतः परिच्छेदरहितं ब्रह्म  
॥ २९ ॥ अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म ॥ ३० ॥ तुरीयं  
निराकारमेकं ब्रह्म ॥ ३१ ॥ अद्वैतमनिर्वाच्यं ब्रह्म  
॥ ३२ ॥ शिवं प्रशांतममृतं परं च ब्रह्म ॥ ३३ ॥ यदेक-  
मक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं ब्रह्म ॥ ३४ ॥ असावा-  
दित्योब्रह्म ॥ ३५ ॥ ओमित्येतदक्षरं परं ब्रह्म ॥ ३६ ॥  
ब्रह्मवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण  
॥ ३७ ॥ अधश्चोर्ध्वं प्रसृतं ब्रह्मवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्  
॥ ३८ ॥ तदेवनिष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥ ३९ ॥  
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि ॥ ४० ॥

( टीका ) कालत्रयबंधनं जगत्कारणं ब्रह्मकालत्रयाबाधितं  
स्वाज्ञस्वज्ञदृष्टिभ्यां ब्रह्मणः सगुणनिर्गुणत्वं चोपपद्यते माया  
तत्कार्यसत्त्वे तदतीतं सर्वव्यापकप्रत्यगात्मना अभिन्नमपरिच्छिन्नं  
अतन्निरसनमुखतोवेदांतगोचरत्वाप्रत्यक्षाद्यखिलप्रमाणागोचरं व्या-  
पित्वात्कारणत्वात्सर्वात्मत्वाच्च देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितम्  
॥ ३० ॥ अवस्थानयग्रासाविकल्परूपत्वात्तुरीयं निरुपाधिकत्वा-  
न्निराकारं स्वभास्यभासकादित्याद्यवभासकत्वादसौ चिदादित्योब्रह्म-



देत्यर्थः ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ निर्विशेषं ब्रह्मैवेदमयुतं  
तत् स्वाज्ञदृष्टिविकल्पितपुरस्तात्पश्चादक्षिणतश्चोत्तरेणोत्तरतः अध-  
श्रोर्ध्वं चशब्दादाग्नेयादिविदिशोपि गृह्यन्ते तदंतरालं च एवं  
दिगादिकलनाकलितं कृत्स्नं विश्वविराडीशादिभेदेन प्रसृतं व्याप्तं  
किंवहुना ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठं स्वातिरिक्तसत्ताभावात् ॥ ३८ ॥  
यत्कलाविकल्पविरलं तदेव चैतन्यं निष्कलम् ॥ ४० ॥

ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ ४१ ॥

एतद्भावंचिनिर्मुक्तं तद्ब्रह्म ब्रह्मतत्परम् ॥ ४२ ॥

चिन्मात्रात्परमं ब्रह्म चिन्मात्रात्तास्तिक्तोऽपिहि ४३

अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्रात्तद्वि विद्यते ॥ ४४ ॥

सदोदितं परं ब्रह्मज्योतिषामुदयोयतः ॥ ४५ ॥

यस्मिन्स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते ॥ ४६ ॥

सर्वशक्तिपरं ब्रह्म नित्यमापूर्णमद्वयम् ॥ ४७ ॥

सत्ता सर्वपदार्थानां गम्यं ब्रह्माभिधं पदम् ॥ ४८ ॥

परं ब्रह्म परं तत्त्वं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ४९ ॥

अक्षरं परमं ब्रह्म निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥ ५० ॥

ब्रह्मैवैकमनाद्यंतमग्निवत्प्रविजृम्भते ॥ ५१ ॥

नकिञ्चिद्भावाकारं यत्तद्ब्रह्म परंविदुः ॥ ५२ ॥

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह जानास्ति किञ्चन ॥ ५३ ॥

ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्स्तुतोवस्तुतोऽपि च ॥ ५४ ॥

तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्यम् ॥ ५५ ॥

शान्तं च तदतीतं च परं ब्रह्म तदुच्यते ॥ ५६ ॥

अनुभूतिपरं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते ॥ ५७ ॥

( टीका ) यत्स्वयं प्रकाशतयोपबृंहितं तदेव ब्रह्मशब्देनेरितं

तद्ब्रह्मैतत्स्वातिरिक्तभावविनिर्मुक्तं यतस्तूर्यादिज्योतिषामुदयोभ-



यति तत्सदोदितं यत्सर्वशब्दलयाधिकरणं तत्परं ब्रह्म यद्व्यादि-  
 सर्वपदार्थजलाहरणादिशक्तिजनकं तदेव सदापूर्णम् ॥ ४७ ॥  
 व्यादिसर्वपदार्थानां यत्सत्ताप्रदं तत्पदं ब्रह्मेति गम्ये तदेव परं तत्त्वं  
 निर्विशेषम् ॥ ४८ ॥ यत्स्वातिरिक्तिभावनाकारस्यापवादाधिष्ठानं  
 निस्तरंगाब्धिवत्स्वमात्रत्वेन प्रविजृम्भते स्वातिरेकेणैव ब्रह्मणि  
 किञ्चन किञ्चिदपि नानारूपं नास्ति ब्रह्मणोनानारूपत्वात् ॥ ४९ ॥  
 स्वज्ञस्वाज्ञदृष्टिभ्यां स्वेन रूपेण विश्वाकारेणापि ब्रह्मैव विद्यते  
 ब्रह्मातिरिक्तस्य मायामात्रत्वात् ॥ ५० ॥ विद्याविषयं ब्रह्म शांत-  
 मायातत्कार्यं तच्छांतैरपि माया तत्कार्यसापेक्षतः सविशेषप्रसक्तौ  
 तदतीतं तदपन्हवसिद्धमित्यर्थः ॥ ५१ ॥ तत्सर्वानुभूतितः परं  
 तदेव सारं निर्विशेषम् ॥ ५२ ॥

यदिदं ब्रह्म पुच्छाख्यं सत्यज्ञानद्वयात्मकम् ॥ ५८ ॥  
 सद्रूपं परमं ब्रह्म विपरिच्छेदवर्जितम् ॥ ५९ ॥  
 तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिदूच्यते ॥ ६० ॥  
 सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ६१ ॥  
 प्रज्ञानमेव तद्ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम् ॥ ६२ ॥  
 अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रूपब्रह्म तद्भवेत् ॥ ६३ ॥  
 भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ६४ ॥  
 ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ ६५ ॥  
 ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्नच ॥ ६६ ॥  
 ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्मि ब्रह्मणोऽन्यत्फलं नहि ॥ ६७ ॥  
 ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि ॥ ६८ ॥  
 ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यदसद्गुः ॥ ६९ ॥  
 नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ॥ ७० ॥  
 बीजं मायाविनिर्मुक्तं परब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ७१ ॥



मदूरूपमद्वयं ब्रह्म आदिमध्यांतवर्जितम् ॥ ७२ ॥

सर्वत्रावस्थितं शान्तं चिद्रब्रह्मेत्यनुभूयते ॥ ७३ ॥

( टीका ) यत्पुच्छत्येन सर्वाधारत्वेनोपबृंहितं तद्ब्रह्मापरि-  
च्छिन्नम् ॥ ६० ॥ यत्सनातनं ब्रह्म तत्सत्यज्ञानानन्दलक्षणम् ॥  
६१ ॥ ६२ ॥ इदमिदं वस्त्वस्त्वीदं भातीदं प्रियमिति यदा  
बालगोपालमनुभूयते तद्धि सच्चिदानन्दं ब्रह्मेत्यर्थः ॥ ६४ ॥  
सच्चिदाकाशं ब्रह्म तदतिरेकेणान्यतरदित्याद्यसद्वपुरित्यन्तं ना-  
स्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥ राम इति बीजमाकाराख्यमायाविनिर्मुक्तञ्चेत्  
परं ब्रह्म भवति राममंत्रार्थविचारप्रकरणात् यद्वा बीजं चैतन्यं  
बीजत्वापादकमायामाये निर्माय ब्रह्मचैतन्यं भवेदित्यर्थः ॥ ७१ ॥  
मदूरूपमस्मत्प्रत्ययालंबनप्रत्यक्चैतन्यं सर्वत्रावस्थितं सदब्रह्मेत्यनु-  
भूयते ॥ ७३ ॥

मिद्धांतोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापन्हव एव हि ॥ ७४ ॥

नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमकलमम् ॥ ७५ ॥

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः ॥ ७६ ॥

स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ॥ ७७ ॥

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ॥ ७८ ॥

राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥ ७९ ॥

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ ८० ॥

श्रुतं सत्यं परं ब्रह्म सर्वसंसारभेषजम् ॥ ८१ ॥

ब्रह्मचिद्ब्रह्मभुवनं ब्रह्मभूतपरंपरा ॥ ८२ ॥

ब्रह्माहं ब्रह्मचिच्छत्रुर्ब्रह्मचिन्मित्रवांधवाः ॥ ८३ ॥

ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते ॥ ८४ ॥

जगद्रूपतयाप्येतद्ब्रह्मैव प्रतिभासते ॥ ८५ ॥

विद्याविद्यादिभेदेन भावाभावादिभेदतः ॥ ८६ ॥



( टीका ) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ब्रह्मव्यतिरिक्तं न किंचिद-  
स्तीत्यध्यात्मशास्त्राणामीशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदां सिद्धांतस्तु स्वा-  
तिरिक्तसर्वापन्हव एव स्वातिरिक्तस्य शशविषाणवदवस्तुत्वम् पश्य-  
तेहापि सन्मात्रमसदन्यत् ब्रह्ममात्रमसन्नहि दृश्यरूपं च दृश्यं  
सर्वं शशविषाणवदिति श्रुतेः अतएव स्वातिरिक्तकारणीभूतमाया  
तत्कार्याविद्या कलनाशान्तं तत्कृतजलान्यभावादकलयमिदं ब्रह्म-  
मात्रमवशिष्यत इत्यर्थः ॥ ७५ ॥ स्वारोपितातन्निरासतः स्वयमेव  
ब्रह्म भवेत् ॥ ७६ ॥ निर्विशेषतया राजते महीयत इतिरामः स  
एव परमं ब्रह्म सर्वस्मात्परत्वात् 'स्वाप्त्युपायभूततपोराम एव उपे-  
यभूतपरं तत्त्वमपि राम एव सत्तासामान्यरूपत्वात् श्रीराम एव  
तारकं ब्रह्म स्वाज्ञपटलसंतारणात् ॥ ७८ ॥ ऋत व्यावहारिकं  
सत्यं पारमार्थिकं चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव भजतां भवरोगभेषजं भवती-  
त्यर्थः ॥ ८० ॥ स्वज्ञस्वाज्ञदृशां चिद्ब्रह्मरूपतया भावनादिशि-  
ष्यान्तभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते परमार्थदृष्ट्या स्वमात्रं प्रतिभासत  
इत्यर्थः ॥ ८१ ॥ ८६ ॥

गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ॥ ८७ ॥  
इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रसुहिसः ॥ ८८ ॥  
कालो ब्रह्म कला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयं प्रभम् ॥ ८९ ॥  
एकं ब्रह्म द्वयं ब्रह्म मोहो ब्रह्म शमादिकम् ॥ ९० ॥  
दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ॥ ९१ ॥  
लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः ॥ ९२ ॥  
पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ॥ ९३ ॥  
जीव एव सदा ब्रह्म स्वयं ब्रह्म सनातनामिति ॥ ९४ ॥  
सार्द्धातिक्रमब्रह्मस्वरूपवाक्यानि त्रिणवतिः अथ  
सार्द्धातिकावशिष्टवाक्यानि सर्वविशेषज्ञेतिनेतीति



विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म ॥ १ ॥ जीवभावज-  
गद्धावबाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यते ॥ २ ॥ पूर्णमदः  
पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥ ३ ॥ पूर्णस्य पूर्णमादाय  
पूर्णमेवावशिष्यते ॥ ४ ॥ कार्योपाधिरयं जीवः कार-  
णोपाधिरीश्वरः ॥ ५ ॥ कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबा-  
धोऽवशिष्यते ॥ ६ ॥

( टीका ) स्वाज्ञस्वज्ञदृष्टिभ्यां इदमित्यादिसनातनान्तरूपेण  
निर्विशेषं ब्रह्मैव भातीत्यर्थः ॥ १ ॥ आहत्यवाक्यसंख्यात्रिसप्त-  
त्यधिकाष्टशत ब्रह्मस्वरूपप्रकरणविवरणं संपूर्णम् अथ सार्धान्तिका-  
वशिष्टस्वरूपवाक्यानि लिख्यन्ते सर्वेत्यादिना स्वाज्ञविकल्पितसर्व-  
विशेषं नेतिनेतीति विहाय तन्निषेधास्पदतया यदवशिष्यते तदेव  
ब्रह्म ॥ १ ॥ स्वस्मिन् स्वातिरिक्ते च समारोपितजीवभावजगद्धा-  
वयोर्ब्रह्मातिरिक्तं नास्तीति बाधितयोः सतोः निःसपत्नं प्रत्यगभिन्नं  
ब्रह्मैवावशिष्यते ॥ २ ॥ पूर्णमद इत्याद्यर्द्धांतिकद्वयं शांतिप्रकरणे  
व्याख्यातम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ तूलांतःकरणाविद्योपाधिकोजीवः मूला-  
विद्योपाधिकस्त्वीश्वरः स्वाज्ञविकल्पितकार्यकारणोपाध्यपन्हवात्  
निष्प्रतियोगिकपूर्णबोधः परमात्मैवावशिष्यते ॥ ६ ॥

ततस्तिमितगमूभीरं नतेजोन तमस्ततम् ॥ ७ ॥  
अनाख्यमनभिव्यक्तं स्वरिकचिदवशिष्यते ॥ ८ ॥  
संकल्पमनसी भिन्ने न कदा च न केनचित् ॥ ९ ॥  
संकल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ॥ १० ॥  
महाप्रलयसंपत्तौ ह्यसत्तासमुपागते ॥ ११ ॥  
अशेषदृश्ये सर्गादौ शान्तमेवावशिष्यते ॥ १२ ॥  
खेदोल्लासविलासेषु स्वात्मकर्तृतथानया ॥ १३ ॥  
स्वसंकल्पे क्षयं याते समतैवावशिष्यते ॥ १४ ॥



( टीका ) यतो ब्रह्मनिर्विशेषं ततस्तिमितगम्भीरम् भूमरूप-  
त्वात् तर्त्तिक तेजः नैत्याह न तेज इति भूतभौतिकत्वाभावात्  
तथाचेत्तमोरूपं वास्यादित्यत्राह न तम् इति स्वाज्ञानतमसोऽभावात्  
किंतु तत् व्याप्यसत्त्वे तद्व्यापकं तदाख्या किमिति अनाख्यं  
ब्रह्मेत्याख्याया अपि मायिकत्वात् तर्त्तिकरूपेणाभिव्यक्तमिति चेत्  
अनैभिव्यक्तं निष्पतियोगिकस्वमात्रज्ञानं विनाऽनभिव्यक्तित्वात्  
उक्तविशेषणविशिष्टं सत् किंचिद्विर्विशेषं स्वमात्रमवशिष्यत इत्यर्थः  
॥ ८ ॥ वृत्तिवृत्तिमत्तेरभेदात् संकल्पमनसोः कदापि भेदो न विद्यते  
तत्र ब्रह्मातिरिक्तं नैति कामसंकल्पादिवृत्तिकदंबे गलिते नष्टे  
सत्यथ स्वस्वरूपमात्रमवशिष्यते ॥ १० ॥ स्वातिरेकेण विश्वतनी-  
यविश्वस्य सर्गादौ सृष्टिस्थितिप्रलयकाले महाप्रलयसंपत्तावासंतिक-  
प्रलयाभिधानचतुष्पदैक्यसमये च स्वातिरेकेण विश्वं जातं स्थितं  
नष्टमिति यदुच्यते तस्मिन्मशेषदृश्ये स्वातिरिक्तसामान्यं असत्ता-  
मपन्हवतां गते सत्यथ स्वातिरिक्तनाशांतं ब्रह्मैवावशिष्यते ॥ १२ ॥  
स्वयं निर्विशेषपरमात्माऽपि स्वाज्ञानविकल्पितस्त्वेऽपि सत्तालाभा-  
लाभाभ्यां संजातखेदोल्लासविलासेषु दुःखी सुखी कृष्णादिकर्म-  
कर्त्ता तत्फलभोक्तेति चानया स्वात्मकर्तृतयाविकल्पितस्वसंकल्पे  
क्षयमपन्हवं याते सत्यथ स्वातिरिक्तविषमताग्राससमतासच्चिदान-  
न्दानन्दरूपिण्येवावशिष्यते ॥ १४ ॥

समता सर्वभावेषु याऽसौ सत्यपरा स्थितिः ॥ १५ ॥

परमासृतनास्नी सा समतैवावशिष्यते ॥ १६ ॥

कालत्रयमुपेक्षित्या हीनायाश्चैत्यबंधनैः ॥ १७ ॥

चितश्चैत्यमुपेक्षित्याः समतैवावशिष्यते ॥ १८ ॥

सा हि वाचाभगम्यत्वादसत्तामिव शाश्वतीम् ॥ १९ ॥

नैरात्म्यसिद्धांतदशामुपधातेव शिष्यते ॥ २० ॥



यावद्यावन्मुनि श्रेष्ठ ! स्वयं सन्त्यज्यतेऽखिलम् ॥ २१ ॥

तावत्तावत्परात्माः परमात्मैव शिष्यते ॥ २२ ॥

( टीका ) स्वाज्ञादृष्टिविकल्पितसर्वभावेषु पञ्चभूतभौतिकेषु नामरूपादियोगतोविषयेष्वपि स्वज्ञादृष्ट्या याऽसौ सती सच्चिदानन्दरूपिणी नामरूपतः परास्थितिः समता विधाति सेयं परमात्मतनाम्नी विदेहकैवल्यरूपिणी समतैवावशिष्यत इति ॥ १५ ॥ १६ ॥ स्वातिरेकेण भूतादिकालत्रयत्वेति कालत्रयमुपेक्षित्याश्चेतोविकल्पितचैत्यबंधनैर्विषयाभिनिवेशैर्विहीनायाः किंतेन कार्यमिति चैत्यमुपेक्षित्याश्रितः प्रतीचः परब्रह्मैक्यतः निष्प्रतियोगिकसमतैवावशिष्यते ॥ १७ ॥ १८ ॥ या स्वातिरिक्तसर्वापन्हवसिद्धा सा हि चित्स्वाज्ञविकल्पितवाङ्मानसागम्यतया स्वातिरिक्तापन्हवरूपिण्यसत्ता निर्विशेषतया शाश्वती स्वाज्ञाविकल्पिताऽत्मा जीवः अनात्मा देहादिः स्वमात्रतया तदपन्हवसिद्धत्वं नैरात्म्यं तदेव सिद्धान्तोयस्यां पारमार्थिकस्वावशेषदशायामाविर्भूतः सेयं नैरात्म्यसिद्धान्तदशा तामुपयाता सैव चित्स्वमात्रमवशिष्यते इवशब्दद्वयतः स्वाज्ञस्वज्ञदशायामपि निष्प्रतियोगिकस्वमात्रत्वमवगम्यत इत्यर्थः ॥ १९ ॥ २० ॥ हेमुनिश्रेष्ठ निदाघनिर्विशेषब्रह्मावरणवौद्धम्यांसकद्वैतादिमतसिद्धांतदेहत्रयात्मजीवात्मजगज्जीवेषु भेदेषु यावद्यावत्स्वयं सन्त्यज्यतेऽखिलं तावत्तावद्येन परमात्माहमित्यवलोक्यते सोऽयं परालोको ब्रह्मविद्धरः प्रत्यगभिन्नपरमात्मैव भूत्वावशिष्यते ॥ २१ ॥ २२ ॥

अभ्यासेन परिस्पंदे प्राणानां क्षयमागते ॥ २३ ॥

मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ॥ २४ ॥

ज्ञेयवस्तु परित्यागे विलयं याति मानसम् ॥ २५ ॥

मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते ॥ २६ ॥



यतोवाचोनिवर्त्तन्ते विकल्पकलनान्विताः ॥ २७ ॥

विकल्पसंक्षयाजंतोः पदं तदवशिष्यते ॥ २८ ॥

चिद्व्योमैव किलास्तौह परापरविवर्जितम् ॥ २९ ॥

सर्वत्रासंभवच्चैत्यं यत्कल्पांतेऽवशिष्यते ॥ ३० ॥

पंचरूपपरित्यागादर्थरूपप्रहाणतः ॥ ३१ ॥

अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत् ॥ ३२ ॥

( टीका ) वेदांतश्रवणसहकृतयमाद्यष्टांगयोगाभ्यासेन प्रा-  
णानां परिस्पंदे चलने क्षयमागते सत्यथ स्वालंबनप्राणापानादि-  
वृत्यभावान्मनः प्रशमं नाशमायाति ततोनिर्वाणं कैवल्यमवशिष्यते  
॥ २३ ॥ २४ ॥ निर्विशेषब्रह्मवित्स्वातिरिक्तघटादिशेषसामान्यं नेति  
यदा परित्यजति तदा लंबनं मानसं विलीयते मनसि विलयं  
याते सत्यथ कैवल्यमवशिष्यते ॥ २५ ॥ २६ ॥ यतोनिर्विशेषब्रह्मणः  
सकाशान्नानाविधघटपटादिविकल्पकलनान्विता वाचोनिवर्त्तते जं-  
तोश्चित्तविभातनानाविकल्पसंक्षयात् यन्निर्विशेषतयापद्यते ज्ञायत  
इतिपदं तद्वह्नौवावशिष्यते ॥ २७ ॥ २८ ॥ इहाद्यापि पुरा कल्पांते  
च सर्वत्रसर्वावस्थास्वपि स्वातिरेकेणासंभवच्चैत्यं स्वातिरिक्तविषय-  
सामान्यशून्यं इदं परमुत्कृष्टमपरमपकृष्टं तद्वर्जितं यद्वा शिवजी-  
वौपरापरौ तद्वर्जितं यच्चिद्व्योमैवास्ति किल तदेवावशिष्यते ॥ २९ ॥  
॥ ३० ॥ निर्विशेषब्रह्मातिरिक्तं न किंचिदस्तीति ब्रह्मादिसदा-  
शिवांतपंचब्रह्मरूपपरित्यागात् तदवर्गभवं पंचभूतभौतिकजातसर्व-  
रूपं तत्प्रहाणतः पंचब्रह्म तत्कार्यं प्रपंचाधिष्ठानं महदपरिच्छिन्नं  
परन्त्वन्ते स्वयमेकं सदवशिष्यते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वक्षिष्ये यथार्थतः ॥ ३३ ॥

स्वयं सृत्वा स्वयं श्रुत्वा स्वयंमेवावशिष्यते ॥ ३४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् यथा रसान्नित्यमगंधवच्चयत्



अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं तदेव शिष्यस्यमलं निरामयम्  
 सार्द्धांतिकाष्टस्वरूपवाक्यानि द्वाविंशत्यधिकत्रिंशत्  
 सार्द्धांतिकावशिष्टस्वरूपवाक्यानि षड्विंशत् अथ  
 सार्द्धांतिकफलवाक्यानि सयोंहवै तत्परमं ब्रह्म वेद  
 ब्रह्मैव भवति ॥ १ ॥ ब्रह्मविदाप्नोति परम् ॥ २ ॥ ब्रह्म  
 संस्थोऽमृतत्वमेति ॥ ३ ॥ तरति शोकमात्मवित् ॥ ४ ॥  
 य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति ॥ ५ ॥  
 स एष विद्युक्कनोविदुष्कनोब्रह्मविद्विद्वान् ब्रह्मैवाभि-  
 प्रैति ॥ ६ ॥

( टीका ) हे शिष्य ईशाद्यष्टोत्तरशतसर्ववेदांतसिद्धांतसारं  
 ब्रह्ममात्रमसन्नहि सर्त्किचिदवशिष्यत इत्येवं रूपं यथार्थतोवच्य  
 तच्छृणु किंतदितिचेत्स्वयं श्रुत्वा देहादानहं भावं निःशेषतस्त्यक्त्वा  
 स्वयं तदपवादाधिष्ठानं ब्रह्म भूत्वाऽधिष्ठेयसापेक्षाधिष्ठानतापाये  
 निरधिष्ठानरूपेण विद्वान् यमेवावशिष्यत इति यत् स एव सर्ववेदां-  
 तसिद्धांत इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ अशब्दमित्यादिपूर्वाद्धि व्याख्यातं यत्  
 महत्तत्त्वं तत्कार्यादपि परं कूटस्थत्वात् ध्रुवं स्थूलप्रपंचाभावात्  
 निरामयं प्रत्यग्रूपणामलं भवति स्वविकल्पितविशेषांशापाये निर्विशे-  
 षरूपेण स्वयमेवावशिष्यते ॥ ३६ ॥ आहत्य वाक्यसंख्यानवशतम्  
 ॥ ६०० ॥ अवशिष्टवाक्यप्रकरणविवरणम् ॥ स्वरूपज्ञानिनां  
 स्वांतर्ज्ञानानुरूपफलप्रदर्शनार्थमथफलस्वरूपमहावाक्यानि लिख्यंते  
 सय इत्यादिना योंहवै तन्निर्विशेषपरमं ब्रह्म वेद स्वमात्रमिति  
 जानाति वेदनसमकालं समुनिर्ब्रह्मैव भवति ॥ १ ॥ ब्रह्मवित्परं  
 आप्नोति ॥ २ ॥ ब्रह्मसंस्थः परिवाद निर्विशेषब्रह्मज्ञानतोऽमृतत्वं  
 मोक्षमेति ॥ ३ ॥ प्रत्यगात्मवित्कामादिदृत्तिप्रभवशोकं तरति  
 ॥ ४ ॥ य एवं सर्वं ब्रह्म तदंतः पातित्वादहमपि ब्रह्मेति वेदचे-



तदैषोयमिदं सर्वं भवति सर्वात्मा भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स एष  
ब्रह्मविद्वान् तद्देदनसमकालं पुण्यपापविरलोभूत्वा ब्रह्मैवाभिप्रेति  
य एवं निर्बीजं वेद निर्बीज एव स भवति ॥ ७ ॥

तद्ब्रह्मैवाहमस्मीति ब्रह्म प्रणवमनुस्मरन् भ्रमरकी-  
टन्यासेन शरीरत्रयमुत्सृज्य सन्यासेनैव देहत्यागं  
करोति स कृत्यकृत्यो भवति ॥ ८ ॥ तमेव ज्ञात्वा  
विद्वान् मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ तदेवं विद्वांस इहैवा-  
मृता भवन्ति ॥ १० ॥ अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचार्य  
तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते जंतुर-  
मृतत्वं च गच्छति ॥ १२ ॥ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं  
कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ॥ १३ ॥ तदा विद्वान्  
पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः पुरुषं साम्यमुपैति ॥ १४ ॥

( टीका ) निर्बीजं निर्विशेषमित्यर्थः ॥ ७ ॥ यत्तुरीयोकारा-  
ग्रविद्योतं तत्तुरीयं ब्रह्मैवाहमस्मीति ब्रह्म प्रणवानुसंधानं कुर्वन्  
यथा भ्रमरोत्पन्नकीटकः स्वकारणीभूतं भ्रमरं ध्यायमानो भ्रमरो  
भवति कीटत्वाभिमानं विहायेत्यर्थः तथाऽयं विद्वान् सामान्यः  
शरीरत्रयाभिप्रेतिमुत्सृज्य स्वातिरिक्तसामान्यसन्यासेन निःशेष-  
तोदेहाभिमानत्यागं यदि करोति तदा कृत्यकृत्यो मुक्तो भवतीत्यर्थः  
॥ ८ ॥ य एवं निर्विशेषचिद्धातुत्वेनोक्तस्तं स्वमात्रमिति ज्ञात्वा  
विद्वान् स्वमात्रभावं ग्रसतीति मृत्युः संसारस्तन्मुखात्प्रमुच्यते  
मुक्तो भवति यदा निर्विशेषं ब्रह्म स्वमात्रमिति जानन्ति विद्वांसस्त-  
दैवमिहैवामृता भवन्ति ॥ १० ॥ तमात्मानं निचार्य ज्ञात्वा तत्स-  
मकालं संसारबन्धात्प्रमुच्यते जन्तुर्विद्वान् यज्ज्ञात्वा मुच्यते बंधनात्  
अमृतत्वं च गच्छति ॥ १२ ॥ यदा निर्विशेषं ब्रह्म स्वमात्रमिति  
पश्यतीति पश्यः विद्वान्स्वयं प्रकाशत्वेन रुक्मवर्णं कर्त्तव्यप्रसक्तौ



कर्तारम् ईशितव्यप्राण्यदृष्टत ईशं पृण्णत्वात् पुरुषन्निरुपाधिसोपा-  
धिभ्यां ब्रह्मयोनिं वस्तुचिद्धातुं स्वमात्रमिति पश्यते पश्यति तदा  
विद्वान् पश्यः पुण्यपापे तदुपलक्षितस्वातिरिक्तकलनां विधूय  
तत्रापि निरञ्जनः सन्परमं निर्वैषम्यं साम्यं स्वमात्रमित्युपैति प्रति-  
पद्यत इत्यर्थः ॥ १४ ॥

एतद्योवेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थि विकि-  
रतीह सौम्य ॥ १५ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते  
सर्वसंशयाः ॥ १६ ॥ जीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्हृष्टे  
परावरे ॥ १७ ॥ यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तं  
गच्छन्ति नामरूपे विहाय ॥ १८ ॥ तथा विद्वानाम-  
रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा  
तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ २० ॥

( टीका ) योविद्वानेतद्ब्रह्म प्रत्यग्रूपेण सर्वप्राणिगुहायां  
निहितं वेद तद्वेदनसमकालं सोऽयं विद्वान् अविद्यमानाऽविद्याग्रन्थि  
स्वातिरिक्तमस्ति नास्तीति विश्रमरूपमिह जीवन्नेवामृतः सन्वि-  
किरति त्रिनाशयतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ समष्ट्याधारः परः व्यष्ट्याधारः  
प्रत्यगवरः यः स्वाधेयसापेक्षाधारविरलोभवति तस्मिन्निराधारे नि-  
विशेषे ब्रह्मणि स्वावशेषतया दृष्टे सत्यथास्य ब्रह्मविद्वरीयसो  
हृदयग्रन्थिर्भिद्यते हृदित्यविद्यापदमयमिति तदास्पदं तयोराधेयाधा-  
रतया तादात्म्यसम्बन्धोहि हृदयग्रन्थिः ब्रह्मज्ञानखड्गेन भिद्यते  
नाशमेति सर्वसंशयाः छिद्यन्ते लौकिकवैदिकपरापरविद्याविषयक  
ज्ञानफलमस्ति नवेत्यादिरूपाः छिन्ना भवन्ति अस्यैव कर्माणि च  
क्षीयन्ते आगाम्यादिभेदतः कर्माणि विविधानि वर्तमानदेहानुष्ठित-  
शुभात्मकं कर्मागामिशास्त्रज्ञानात् स्थूलांशनिवृत्त्या तत्राश्लेषोजायते  
अनंतकोटिजन्मकारणं संचितकर्म तद्विज्ञानेनागामिसंचितार्थं विन-



श्रयति स्थूलदेहारंभकं प्रारब्धकर्म तत् ज्ञानविज्ञानाभ्यां नश्यति  
 तस्य प्रवृत्तफलत्वेनानुभवनाशयत्वात् यदि सम्यक्ज्ञानं जायते  
 तदागाभ्यादिकर्मत्रयभागत्रयं क्षीयते तत्त्वज्ञानं जातं चेत्तदर्थमात्रा-  
 णोऽपि निःशेषं क्षीयते एवंचिद्ब्रह्मसंशयवतः निःशेषं कर्मत्रयमपि  
 क्षीयते तदा विद्वान् ब्रह्ममात्रमवशिष्यत इत्यर्थः ॥ १६ ॥ १७ ॥ यथा  
 गंगाकावेर्यादिनद्यः स्यन्दमाना प्रवहन्त्यः सत्यः गंगाकावेरीत्या-  
 दिनामरूपे विहाय समुद्रेऽस्तमदर्शनं गच्छन्ति तथा विद्वान् गौरोऽहं  
 देवदत्त इत्यादिनामरूपाद्विमुक्तः सन् दिव्यं स्वयं प्रकाशं परात्सा-  
 क्षिणोऽपि परं पुरुषस्त्रिंशेषचिद्धातुमुपैति ॥ १८ ॥ १९ ॥  
 तमात्मानं ज्ञात्वा मृत्युं स्वातिरिक्तभ्रममप्यत्येत्यतिक्रामति मुक्तये-  
 ज्ञानोत्तरं पन्था न विद्यत इत्यर्थः ॥ २० ॥

तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्मसंपद्यते ध्रुवम् ॥ २१ ॥  
 यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षरवित्सदा ॥ २२ ॥  
 परब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रांतिरिष्यते ॥ २३ ॥  
 यद्यत्स्वाभिमतं वस्तु तस्य जन्मोक्षमश्नुते ॥ २४ ॥  
 असंकल्पनशब्देण छिन्नं चित्तमिदं यदा ॥ २५ ॥  
 सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ २६ ॥  
 प्रियेषु स्वंषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ २७ ॥  
 विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनातनम् ॥ २८ ॥  
 घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः ॥ २९ ॥  
 सगच्छति निरालम्बं ज्ञानालोकं सनातनम् ॥ ३० ॥  
 तृणाग्नेष्वंशरेभानौ नरनागामरेषु च ॥ ३१ ॥  
 यस्तिष्ठति तदेवाहमिति मत्वा न शोचति ॥ ३२ ॥  
 सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम् ॥ ३३ ॥  
 ( टीका ) परमाक्षरविदेहोयगाविमुक्तकीकटादौ म्रियते सदा



ज्ञानी परब्रह्मणि लीयते ब्रह्मैव भवति न तस्योत्क्रांतिरिष्यते अत्रैव  
 समलीयत इति श्रुतेः यद्यत्स्वाभिमतं विषयजातं तद्ब्रह्मातिरिक्तं  
 नेति त्यागसमकालं विद्वान् स्वातिरिक्तभ्रममोक्षमश्नुते यदा संक-  
 ल्पसामान्यत्यागशस्त्रेण चित्तमिदं छिन्नं भवति तदा योगी सर्व-  
 रूपेण सर्वगतत्वेन वस्तुतस्तत्कलनाशान्तं ब्रह्म स्वावशेषधिया  
 संपद्यते ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ निर्वि-  
 शेषब्रह्माज्ञानी परदृष्ट्या स्वदेहकृतपुण्यपापं च स्वेषु स्वप्रशंसा-  
 पूजादिकारिषु प्रियेषु हेतुनताडनादिकारिष्वप्रियेषु च निःशेषं  
 विसृज्य निर्विशेषं ब्रह्मस्वमात्रमित्यखंडनिर्विकल्पकध्यानयोगेन  
 सनातनं ब्रह्म स्वावशेषधियाप्येति ॥ २७ ॥ २८ ॥ यथोपाधि-  
 विनिर्मुक्तघटाकाशमहाकाशमात्रं सोऽयं ब्रह्मविद्धरीयास्तथा  
 स्वातिरिक्तभ्रमविलयाधिकरणमात्मानं प्रत्यञ्चं तत्त्वतो ब्रह्ममात्रतया  
 वेत्ति चेत्तदा सोऽयं विद्वान् ज्ञानालोकं ज्ञानैकगम्यं समन्ततो निरा-  
 लम्बं निर्विशेषभावं गच्छति ॥ २९ ॥ ३० ॥ अम्बरादिपंचभूत-  
 भौतिकेष्वपि प्रत्यगभिन्नब्रह्मरूपेण यस्तिष्ठति विद्वान् तदेवाहमिति  
 मत्वा शोचनीयाभिदाभावाच्च शोचति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ योवर्णा-  
 श्रमातीतसर्वसाक्षिणमात्मानं ब्रह्मरूपतया पश्यति स स्वयं प्रत्यग-  
 भिन्नब्रह्मैव भवति ॥ ३३ ॥

ब्रह्मरूपतया पश्यन्ब्रह्मैव भवति स्वयम् ॥ ३४ ॥  
 तद्ब्रह्मानन्दमहन्द् निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ॥ ३५ ॥  
 विदित्वा स्वात्मनोरूपं न बिभेति कुतश्चन ॥ ३६ ॥  
 वासनां सम्पारित्यज्य मयि चिन्मात्रविग्रहे ॥ ३७ ॥  
 यस्तिष्ठति गतस्नेहः सोऽहं सच्चित्सुखात्मकः ॥ ३८ ॥  
 दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः ॥ ३९ ॥  
 य आस्ते कपिचोर्दूल ब्रह्मनब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ४० ॥



सार्द्धातिकफलवाक्यानि च ॥ ४० ॥

अथ सार्द्धातिकविदेहमुक्तिवाक्यानिविमुक्तश्च विमु-  
च्यते ॥ १ ॥ गुहाग्रंथिभ्योविमुक्तोमृतोभवति ॥ २ ॥

( टीका ) यस्वात्मनः प्रतीचोरूपं ब्रह्मेति विदित्वा कुतश्चन  
न बिभेति स्वस्यैव परमाद्वयत्वेन निर्भयब्रह्मत्वात् ॥ ३४ ॥ ३५ ॥  
॥ ३६ ॥ यः चिन्मात्रविग्रहे मयि यत्र कुत्रापि विगतस्नेहः सन्  
स्वातिरिक्तवस्तुगोचरनानावासनाजालं परित्यज्य स्वातिरिक्तं  
नेत्यपन्हवं कृत्वा स्वावशेषतया तिष्ठति सोऽहं सच्चिदानन्दरूपोभ-  
वामीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ यस्तु ब्रह्मविद्धरीयान् दर्शनादर्शने व्यक्ता-  
व्यक्तप्रपञ्चे स्वातिरिक्तधिया हित्वाऽपन्हवं कृत्वा स्वयं तदपन्हव-  
सिद्धकेवलं ब्रह्ममात्ररूपतयास्ते ॥ ३९ ॥ हेमारुते स स्वयं ब्रह्मैव  
न ब्रह्मवित् वेदनसमकालमेव विदुषोब्रह्मभावं गतत्वादित्यर्थः ॥ ४० ॥  
आहत्य वाक्यसंख्याचत्वारिंशदधिक । वशतम् ॥ ६०४ ॥ फलवा-  
क्यविवरणं संपूर्णम् ॥ २० ॥ विध्याधिफलवाक्यान्तमहावाक्यार्थ-  
संस्कृतानां निष्प्रतियोगिकमात्रावस्थानलक्षणविदेहमुक्तिसिद्धये  
अथ सार्द्धातिकविदेहमुक्तिवाक्यानि लिख्यन्ते विमुक्तश्चेत्यादिना  
पुरैव ब्रह्मात्मना मुक्त एव स्वाज्ञानतोब्रह्म इव भातः पुनः स्वा-  
ज्ञानतोविमुक्त इत्युपचर्यते ॥ १ ॥ हृदयगुहाश्रयाविद्या ग्रन्थिभ्यः  
पुरैव विमुक्तः सन्नधुनापि अमृतोभवतीव भवति ॥ ३ ॥

अथाकामयमानोयोकामोनिष्काम आत्मकाम  
आप्तकामो न तस्य प्राणा उत्कामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते  
ब्रह्मैव सन्नब्रह्माप्येति ॥ ३ ॥ तद्यथाहिनिर्लघिनी वल्मीके  
मृता प्रत्यस्ताशरीरैवमेवेदं शरीरं शेतेऽथायमशरीरोऽ-  
मृतः प्राणोब्रह्मैव तेज एव ॥ ४ ॥ अशरीरोनिरिन्द्रि-  
योप्राणोतमाः सच्चिदानन्दमात्रः सस्वराद्भवति ॥ ५ ॥



( टीका ) अथ स्वातिरिक्तप्रपञ्चविरक्त्यनन्तरं कामनीयविष-  
याभावादकामयमानः योऽयमक्रामः कामा यस्माच्चिर्गताः सोऽयं  
निकामः आत्मैव कामोयस्य सोऽयमात्मकामः स्वाप्तव्याप्तिः आत्म-  
कामः एवं निर्विशेषं ब्रह्म स्वमात्रमिति योजानाति तस्य ब्रह्मविद्य-  
रीयसः प्राणोपलक्षितपिण्डाण्डब्रह्मांडाभासाः संतीति यत्प्रांतिस्तद-  
दृष्ट्या प्राणादयः स्वाधिकरणो विलयं भजन्तु वस्तुतोब्रह्ममात्रभा-  
वापत्तेः स्वातिरिक्तप्राणाद्यपन्धवपूर्वकत्वात् अत एवायं स्वाज्ञादि-  
दृष्ट्या स्वातिरिक्तमोहे सत्यमिति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीत्युपचर्यते  
॥ ३ ॥ तत्र यथा लोके अद्विर्यस्यांलीयत इत्यहिर्निर्लयिनी सर्प-  
त्वक् स्वाश्रयवल्मीकादौ मृता मृत्यस्ता परित्यक्ताशयीत वर्तेत एवमेव  
स्वेन त्यक्तमिदं सर्पनिर्मोकस्थानीयं शरीरत्रयं मृतमिव शेते चेतन-  
वच्चलतु वा अथेतरस्थानीयोनिद्वान् सर्पवत्तत्र विद्यमानोऽपि  
अशरीरं एव नहि पूर्ववत्तदात्मानं जीवं मन्यते देहजीवात्मदृष्टैः  
परित्यक्तत्वात् यतोऽयमशरीरः अतएवायममृतः तथापि प्राणितीति  
प्राणः प्राणादिप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् यद्वा प्राणस्य प्राणमित्यादि-  
श्रुतितः प्राणशब्देन परमात्मोच्यते यः परमात्मा तद्ब्रह्मैव किम्पुन-  
स्तत्तेज एव चिन्मात्रत्वात् ॥ ४ ॥ विद्वानशरीरेंद्रियप्राणतमोरूप-  
स्वाज्ञानापन्धवसिद्धसच्चिदानन्दमात्रत्वेन स्वे महिम्नि राजत इति  
स्वराड् भवति ॥ ५ ॥

पृथिव्यप्सु प्रलीयते आपोज्योतिषि लीयन्ते  
ज्योतिर्वायौ विलीयते वायुराकाश आकाशमिन्द्रिये-  
ष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूनादौ विलीयन्ते  
भूनादिर्महति विलीयते महानव्यक्ते विलीयतेऽव्यक्त-  
मक्षरे विलीयतेऽक्षरं तमसि विलीयते तमः परे देव  
एकीभवति परस्तात्तासन्नसदसत् ॥६॥ ब्रह्माण्डं तद्गत-



लोकान् कार्यरूपांश्च कारणत्वं प्रापयित्वा ततः सूक्ष्माङ्गं  
कर्मेन्द्रियाणि प्राणाश्च ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरणचतुष्टयं  
चैकीकृत्य सर्वाणि भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयो-  
ज्य भूमिं जले जलं वन्हौ वायौ वायुमाकाशेचाकाश-  
महंकारेचाहंकारं महति महदव्यक्ते अव्यक्तं पुरुषे  
क्रमेण विलीयते विराट् हिरण्यगर्भेश्वरा उपाधिवि-  
लयात्परमात्मनि लीयन्ते ॥ ७ ॥

( टीका ) स्वातिरेकेण सृष्टिसत्त्वे तद्वैपरीत्येन पृथिव्यादि  
स्वस्वकारणो विलीयते आकाशमिन्द्रियेषु इन्द्रियाणि तन्मात्रेषु  
अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतानि भूतादौ विज्ञेयबीजे तत्तु महत्यावरणे  
तत्त्वव्यक्ते तत्त्वक्षरे अक्षरं तमसि सर्वाधिकरणो साक्षिणि साक्षी तु  
परे देवे निर्विशेषब्रह्मणि एकीभवति तत्परस्तात् सत्त्वेनासत्त्वेनासद-  
सत्त्वेन वा स्वातिरिक्तं नास्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥ पञ्चीकृतभूतकार्यब्रह्मा-  
यदादिकर्म पञ्चीकृतभूतपञ्चके प्रविलाप्यापञ्चीकृतभूम्यादि तत्का-  
रणो प्रविलाप्य तत्पञ्चभूभूतं विज्ञेयात्मकाहंकारे तमहंकारमावर-  
णात्मके महति तत्त्वव्यक्ते साधिष्ठानमव्यक्तं निर्विशेषपुरुषक्रमेण  
विलीयते तत्समष्ट्यारोपाधाराविराडादयः स्वस्वोपाधिलयात् पर-  
मात्मनि लीयन्ते ॥ ७ ॥

प्रारब्धक्षयवशादेहत्रयभङ्गं प्राप्योपाधिनिर्मुक्तघ-  
टाकाशवत्परिपूर्णताविदेहमुक्तिः ॥ ८ ॥ यदा सर्वे  
प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥ ९ ॥ अथ मर्त्यो-  
ऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १० ॥ वेदान्तविज्ञान-  
मुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगायतयः शुद्धसत्त्वाः ॥ ११ ॥  
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिसुच्यन्ति  
सर्वे ॥ १२ ॥



( टीका ) विदुषः परारोपितप्रारब्धाभासज्ञानान्तर उपाधि-  
विनिर्मुक्तघटाकाशोयथा परिपूर्णकाशपदं भजति तथा प्रातिभासि-  
कदेहत्रयाभिमानभङ्गं प्राप्य परिपूर्णरूपा या स्थितिः सैव विदेहमु-  
क्तिरित्यर्थः ॥ ८ ॥ यदा ब्रह्मातिरिक्तं न किंचिदस्तीति विदुषो-  
ऽस्य हृदयाश्रिता निर्विशेषब्रह्मावरणरूपा ये सर्वे कामाः प्रमुच्यन्ते-  
ऽपन्हवं यांति अथ सर्वकामापन्हवानन्तरं पुरा देहित्वेन मर्त्योऽपि  
स्वात्तमर्त्यभावं विहायामृतोऽमरणाधर्मो भवति अत्रास्मिन् शरीरे  
स्थितोऽपि ब्रह्म समश्नुते विदेहमुक्तोभवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥ ११ ॥  
इशादिसर्ववेदान्तविज्ञानं यैः सुनिश्चितं ते वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः  
निर्विशेषब्रह्मनिष्ठानुकूलसर्वकर्मसंन्यासप्रयोगात्त्वमात्रावस्थित्यै य-  
तन्त इति समयः संन्यासयोगादेव शुद्धसत्त्वप्रधानाः सन्तः ते  
ब्रह्मैव लोकोब्रह्मलोकः उपासकानां बाहुल्याद्ब्रह्मलोकेष्विति  
बहुवचनं ब्रह्मणीत्यर्थः स्वातिरेकेण यत्परमन्यदिव भाति तस्यां-  
तमवसानं यत्सम्यक्ज्ञानं कलयतीति तत्परांतकालः तस्मिन् परांत-  
काले सम्यक्ज्ञाने सति तत्समकालं परममृतं अमरणाधर्मकं ब्रह्मैव  
एषां ते परा मृता जीवन्त एव ब्रह्मभावमापन्नाः सन्तः विभिन्नघटा-  
काशवन्नस्नेहदीपवच्च सर्वं ब्रह्मविद्भरिष्ठाः परिमुच्यन्ते ब्रह्ममाश-  
पर्यवसन्ना विदेहमुक्ता भवन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥ १२ ॥

तस्याभिधानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्व-  
माया निवृत्तिः ॥ १३ ॥ जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे  
कालसात्कृते ॥ १४ ॥ विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोस्पंद-  
तामिव ॥ १५ ॥ ततः सत्संबभूवाऽसौ यद्विरामप्यगो-  
चरम् ॥ १६ ॥ यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्मब्रह्मविदां  
च यत् ॥ १७ ॥ विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदसत्त्वा-  
त्मकम् ॥ १८ ॥



( टीका ) योनिर्विशेषचिदातुस्तस्य ब्रह्मैवेदं सर्वमित्यभिध्या-  
 नात् तद्व्यष्टिसमष्ट्यास्पदचैतन्यमिदामसक्तौ शोधितत्वंपदार्थप्रत्य-  
 कपरयोर्योजनादैक्यात् तत्रापि सापेक्षश्रुतियुक्तिभ्यां सविशेषस्पृष्ट्यै  
 सविशेषगन्धासहसत्तासामान्यतत्त्वाभावात्तत्त्वज्ञानहेतुसम्यक्ज्ञानात्  
 माया तत्कार्यविश्वसत्तानिवृत्तितो जीवन्मुक्तिमेत्य भूयश्च भूयोऽपि  
 जीवन्मुक्तिदशान्ते तत्त्वज्ञानप्रादुर्भावसमकालं कार्यकारणरूपविश्व-  
 मायाया आत्यन्तिकी निवृत्तिर्भवेदित्यर्थः ॥१३॥ यावदहं ब्रह्मा-  
 स्मीति ब्रह्माकारावृत्तिलहरी प्रवहति तावज्जीवन्मुक्तिः तद्वान्  
 जीवन्मुक्तः प्रारब्धाभासनाशावधिभूमा उषित्वाऽथ यथा पवनो-  
 व्योम्नः स्पन्दतामेत्य व्योमैव भवति पवनव्योम्नोन ॥१४॥ रूप-  
 त्वात्तथामुनिः स्वाधिष्ठित देहाभासे कालसात्कृते आत्यन्तिकदेहा-  
 भिमानीभावात्परदृष्ट्या स्थितेऽपि वा विदेहमुक्तिं विशति विदेह-  
 मुक्तोभवतीत्यर्थः ॥१५॥ असौ जीवन्मुक्तोमुनिः तत आत्यन्ति-  
 काभिमतिनिवृत्यनन्तरं यन्मनोगिरामध्यगोचरं ब्रह्ममात्रपदं तत्पद-  
 मेव संवभूव विदेहमुक्तिपदवीं गतवानित्यर्थः विदेहमुक्तस्य निर्वि-  
 शेषब्रह्ममात्रतयाऽवस्थितत्वात् तमेव शून्यादिकालांतवादिन्यः  
 स्वस्वभ्रांतिविकल्पितात्मानं मेनिर इत्याह यदित्यादिना यन्निर्वि-  
 शेषब्रह्मविदां सर्वविशेषकलनापन्हवसिद्धं ब्रह्मेत्यभिमतं तदेव  
 शून्यवादिनां स्वदृष्टिदोषाच्छून्यसाक्षिणी सत्यपि शून्यमात्मेत्य-  
 भिमतं तन्मते तु स्वापे विश्वादर्शनात्तत्र यच्छिष्यते सर्ववस्तु  
 शून्यवदेवात्मेति यच्छून्यवादिनिश्चितं तदेव विज्ञानविदाममलात्मकं  
 विज्ञानमात्मेत्याभिमतं भवति तन्मते तु यद्यदिदंत्वेनाहंत्वेन जानामि  
 तत्तद्वाह्यविज्ञानमालयविज्ञानं चेति तत्तद्विशिष्टमपि विज्ञानसंतति-  
 रेवात्मेति ॥ १८ ॥

पुरुषः सांख्यदृष्टीनाम्नीश्वरोयोगवादिनाम् ॥ १६ ॥



शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम् ॥ २० ॥

यत्सर्वशास्त्रासिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम् ॥ २१ ॥

यत्सर्वं सर्वगं वस्तु यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ २२ ॥

यदनुत्तमनिष्पन्नं दीपकं तेजसामपि ॥ २३ ॥

स्वानुभूत्यैकमानं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ २४ ॥

यदेकं चाप्यनेकं च साक्षनं च निरञ्जनम् ॥ २५ ॥

यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ २६ ॥

( टीका ) यद्योगाचारानुगृहीतं तदेव सांख्यदृष्टीनां पुरुष  
आत्मेत्यभिमतं तन्मते तु प्रधानं कर्तृपुरुषोर्निर्लिप्तः निर्लेपावस्थि-  
तिर्मुक्तिः यः सांख्यगृहीतः पुरुषः स एव योगवादिनामीश्वर  
आत्मेत्यभिमतः तन्मते तु विशिष्टाद्वैतं सिद्धान्तः तत्साधनं यमा-  
द्यष्टांगयोगः सुषुम्नाद्वारा स्वाभिमतेश्वरलोकं प्रविष्य तत्सारूप्या-  
दिर्मुक्तिः स एव शैवागमस्थानां शिव आत्मेत्यभिमतः तन्मते तु  
समयविशेषनिर्वाणादि दीक्षापूर्वकं तदुपासनाशैवविशिष्टाद्वैतज्ञा-  
नतज्ञानतत्स्वेदहाते शिवदेहसायुज्यं मुक्तिः यः शैवगृहीतः स एव  
कालैकवादिनां काल आत्मेत्यभिमतः तन्मते तु चित्संवलितगुण-  
साम्यप्रकृतिकालः निमेषादिकालो विकृतिः विशिष्टाद्वैतं तत्सिद्धांतः  
बन्धमोक्षौ कालायत्तौ सर्वं कालायत्तमिति ज्ञानतः प्रकृत्यान्वितवित्पदं  
मुक्तिरिति शून्यादिकालात्मवाद्यंतवैषम्यं तु निर्विशेषब्रह्मज्ञानविजृ-  
म्भितं तन्मतगतवैषम्यमात्रापन्हवतोयद्ब्रह्मविदां ब्रह्मेत्यभिमतं देवसाम्यं  
विदेहरूपमुक्तिरित्यर्थः ॥ २० ॥ यच्चावाकादिसर्वशास्त्रप्रमेयगतवै-  
षम्यांशापन्हवसिद्धसिद्धांतरूपं यत्प्रत्यग्रूपेण सर्वहृदयानुगं स्वाति-  
रिक्तसर्वसत्त्वे यत्सर्वं यद्वस्तु सर्वगतं यच्चाप्यन्यापकादिकलनाप-  
न्हवतः परमार्थत्वमवशिष्टं तदेवाऽसौ विदेहमुक्तिरूपेण स्थितः  
॥ २२ ॥ उदयास्तमयादिकलनाविरलचित्सूर्यत्वाद्यदनुत्तमनिष्पदं



यत्तत् दशङ्गतसूर्यादितेजसास्पृहीपकं यद्ब्रह्ममात्रमसन्नहीति  
श्रुतिसिद्धस्यानुभूतैकमानं चशब्दतस्तदतीतत्वमपि द्योत्यते यत्तत्त्वं  
तदसौ स्थित इत्युक्तार्थः ॥ २५ ॥ यत्स्वाज्ञस्वज्ञदृष्टिभ्यां यदने-  
कत्वेनैकत्वेन सांजनत्वेन निरंजनत्वेन सर्वं सत्त्वेनासत्त्वेन च भातं  
यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ॥ २६ ॥

निरानन्दोऽपि खानन्दः सच्चोसच्च बभूव सः ॥ २७ ॥  
नचेतनोऽपि जडोऽपि जडोऽपि जडोऽपि जडोऽपि ॥ २८ ॥

अजममरमनाद्यभाद्यमेकं पदममलं सकलं च निष्कलञ्च  
स्थित इति स तदानमं स्वरूपादपि विमल-  
स्थितिरीश्वरं क्षणेन ॥ ३० ॥ व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः  
स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ ॥ ३१ ॥ साक्षिलकण  
इवांपुष्पौ महात्मा विगलितवासनमेकतां जगाम  
॥ ३२ ॥ संशान्तदुःखमजडात्मकमेकसुप्तमानन्दमन्ध-  
रमपेतरजस्तमोयत् ॥ ३३ ॥

( टीका ) योविदेहमुक्त इति ख्यातः स एव स्वाज्ञस्वज्ञदृष्टि-  
भ्यां निरानन्दसानन्दः सदसच्च बभूव परामर्थदृष्ट्या यं न चेतनः  
चेतोवृत्तीनामसत्त्वेन तच्चेतयितृत्वासंभवात् नच जडः जडाविद्यापा-  
दापन्हवसिद्धत्वात् नचैवासदसूतमानसाग्राह्यत्वात् न सन्मयोमूर्त-  
स्वरूपश्चक्षुराद्यग्राह्यत्वात् किंत्वनृतजडदुःखापन्हवसिद्धसच्चिदान-  
न्दमात्रतया विदेहमुक्तोऽवशिष्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥ अजं  
जन्माद्यभावात्, अमरं नाशाभावात्, अनाद्यं स्वस्य कारणाभावात्,  
आद्यं सर्वकारणत्वात्, एकं परमाद्वयत्वात्, पदं मुक्तालिगम्यत्वात्,  
अमलं मायिकमलाभावात्, सकलं स्वपदप्राप्त्युपायजनकत्वात्,  
निष्कलं वस्त्वभावात् चशब्दोनिष्प्रतियोगिकत्वद्योतकः एवं  
रूपेण यः स्थितः सोऽयं विदेहमुक्तस्तदा निर्विशेषज्ञानोत्तरक्षणेन



मलवत्सर्वसंकल्पापन्धवान्नभः स्वरूपादपि निर्मलः सन् स्वाव-  
 शेषतयाऽवस्थातुमीश्वरोभवतीत्यर्थः ॥ ३० ॥ अशुद्धमाया तत्कार्य-  
 कलङ्कभावाच्छुद्धः निर्मलात्मा विदेहमुक्तोऽसौ पावने पदे निर्मला-  
 त्मनि विगलितनानाविधवासनं यथा भवति तथा महासुधौ सलि-  
 लकणा इव महात्मा श्रीशुक एकतां जगाम निर्विशेषब्रह्ममात्रपदवीं  
 गतवानित्यर्थः । संशान्तदुःखं भूमानन्दत्वात् अजडात्मकं जडमाया  
 तत्कार्याभावात्, एकमुक्तं सुषुप्तस्वातिरिक्तत्वात्, यदपेतरजस्तमः  
 निर्गुणात्वात्, आनन्दमन्थरं स्वानन्दनिर्भरत्वात्, आनन्दघन-  
 मित्यर्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

आकाशकोशतनवोऽतनवोमहान्तस्तस्मिन्पदे ग-  
 लितचित्तलवा भवन्ति ॥ ३४ ॥ विदेहमुक्त एवाऽसौ  
 विद्यते निष्कलात्मकः ॥ ३५ ॥ समग्राग्न्यगुणाधारमपि  
 सत्त्वं प्रलीयते ॥ ३६ ॥ विदेहमुक्तोविमले पदे परम-  
 पावने ॥ ३७ ॥ विदेहमुक्तिविषये तस्मिन् सत्त्वद्या-  
 त्मके ॥ ३८ ॥ चित्तनाशे चिरूपाख्ये नकिञ्चिदिह  
 विद्यते ॥ ३९ ॥ नगुणा नागुणास्तत्र नश्रीर्नाश्रीर्नचै-  
 कता ॥ ४० ॥ जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मचित्तमः  
 ॥ ४१ ॥ उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सन्नब्रह्माप्येति निर्द्वयम्  
 ॥ ४२ ॥

( टीका ) तत्सच्चिदानन्दाकाशं ब्रह्मेति ये मन्यन्ते ते  
 पुरा आकाशकोशतनवोजीवन्मुक्ता अपि यत्सर्वापन्धवतः स्वमात्रम-  
 वशिष्यते तस्मिन् पदे विगलितचित्तोपलक्षितस्वाविद्यापदतत्कार्य-  
 लवा भवन्ति ते स्वतनवो महान्तो विदेहमुक्ता भवन्ति ॥ ३४ ॥  
 जीवनमुक्तत्वाद्यमानित्वादिगुणागणसमग्राग्न्यगुणाधारं सत्त्वं चित्

१ चित्तनोपलक्षितं स्वाविद्यातत्कार्यं तस्य लवः विगलितो येषामीति ।



सामान्याभिधानगुणसाम्यमपि यदा त्रिलीयते अपन्हवं भजति  
तदेवासौ निष्प्रतियोगिकनिष्कलात्मकोभूत्वा विदेहमुक्तो विद्यते  
निर्विशेषब्रह्मात्मनाऽवशिष्यत इत्यर्थः ॥ ४६ ॥ देहत्रयमपन्हवसिद्धे  
परमपावने विमले पदे विरूपंचित्तनाशाभिधाने सत्वरूपगुणसाम्या-  
पन्हवसिद्धे तस्मिन्विदेहमुक्तिविषये विदेहमुक्तिस्वरूपे तत्रसत्त्वादि-  
गुणा न सन्ति नाप्यगुणागुणसाम्यवृत्तयोनिर्विकल्पकरूपा भवन्ति  
नापि मुमुक्षुवाश्रयणीयाश्रीर्विधा भवति तैरनाश्रयणीया श्रीरवि-  
द्यापि न विद्यते नहि सापेक्षैकताप्यस्ति किं बहुना इदमस्ति नास्ती-  
त्यादिविकल्पजातं न किञ्चिदपीह विद्यते विदेहमुक्तस्य निष्प्रतियो-  
गिकस्वमात्रत्वादित्यर्थः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मातिरिक्तं न किञ्चिदस्तीति  
श्रुत्यर्थसंस्कृतब्रह्मावित्तमो ब्रह्मविहारीयान् स्वकर्तव्यार्थाभावात्कुत्ता-  
र्थः, स्वदेहाभिमानाभावात् सदाजीवन्नेव मुक्तो भवति कि-  
मुक्तव्यम् स्वयं ब्रह्मैव सन् देहाद्युपाधिरस्तिनास्तीति विभ्रमना-  
शात्तदपन्हवात् निर्द्वयं ब्रह्माप्येतीति ब्रह्मैव भवेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥

शास्त्रेण नश्येत्परमार्थदृष्टिः कार्यक्षमं नश्यति  
चापरोक्षात् ॥ ४९ ॥ प्रारब्धनाशात्मनिभात्मनाश एव  
विधा नश्यति चात्ममाया ॥ ४९ ॥ अहिनिर्लायिनीस-  
र्पनिर्मुक्तो जीववर्जितः ॥ ४९ ॥ वल्मीके पतितं स्तिष्ठेत्  
सर्पो नाभिमन्यते ॥ ४६ ॥ एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं  
नाभिमन्यते ॥ ४७ ॥ प्रत्यक्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्या-  
ज्ञाने सहेतुके ॥ ४८ ॥ नेतिनेतीति रूपत्वादशरीरो भ-  
वत्ययम् ॥ ४९ ॥ विश्वश्च तेजसश्चैव प्राज्ञश्चेति त्रयेः ॥ ५० ॥  
विराडहिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति त्रयेः ॥ ५१ ॥  
ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूरादयः क्रमात् ॥ ५२ ॥  
स्वस्वोपाधितया देव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि ॥ ५३ ॥















